पुस्तक

ऋषभदेव : एक परिशीलन

भूमिका .

उपाध्याय अमर मुनि

लेखक

श्री देवेन्द्र मुनि

प्रकाशक

सन्मति ज्ञानपीठ

लोहामण्डी, आगरा-२

प्रथम संस्करण

अप्रैल १९६७

मुद्रक .

श्री विष्णु प्रिंटिङ्ग प्रेस,

राजामण्डी, आगरा-२

मूल्य .

तीन रुपए

प्रकाशकीय

आर्यसंस्कृति के आदिपुरुष भगवानऋषभदेव की जीवन-गाथा कला और संस्कृति, शिक्षा और साहित्य, धर्म और राजनीति का आदि-स्रोत है। आर्य संस्कृति का वह महाप्राण व्यक्तित्व दो युगों का सन्धि-काल है, जब अकर्म से जीवन में जड़ता छा रही थी और भोगासक्ति ने जीवन को निःसत्व बना रखा था, तब ऋषभदेव कर्म-युग के आदिसूत्रधार बने, अकर्म को कर्म की ओर प्रेरित किया, भोग को योग में परिष्कृत करने की कला सिखलाई। पुरुषार्थ जगा, कला का विकास हुआ, समाज की रचना हुई, राज्य शासन का निर्माण हुआ, और धर्म एवं संस्कृति की पावन रेखाएँ आकार पाने लगी।

जैन, बौद्ध और वैदिक—तीनो परम्पराओं में भगवान ऋषभदेव की महिमा के स्वर प्रतिध्वनित होते सुनाई देते हैं और यह प्रतिध्वनि आर्य-संस्कृति की मौलिक एकता का अमर चिन्ह है। भले ही ऋषभदेव के विराट व्यक्तित्व को विभिन्न परम्पराओं ने विभिन्न दृष्टियों से देखा हो किन्तु उनसे उनकी महानता और सर्वव्यापकता में कोई अन्तर नहीं आता। विभिन्न दिशाओं में बसने वाले यदि हिमालय या सुमेरु के विभिन्न भागों को देखकर अपनी-अपनी दृष्टि से उनका वर्णन करें तो उनसे हिमालय या सुमेरु की महान सत्ता में कोई अन्तर नहीं पड़ता, बल्कि उनकी सार्वदेशिकता का ही प्रमाण मिलता है।

आर्य संस्कृति के उस मूल पुरुष को, उनके जीवन-स्रोत की विभिन्न धाराओं में अवगाहन कर गहराई से समझने-परखने की आज अत्यन्त आवश्यकता

है। हमे प्रसन्नता है कि परम श्रद्धेय प० श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के शिष्य उदीयमान साहित्यकार श्री देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री ने इस दिशा मे यह एक महनीय प्रयत्न किया है। उन्होने अनेक ग्रन्थो का परिशीलन करके भगवान ऋषभदेव के महान कर्तृत्व को, जिस सक्षेप किन्तु प्रामाणिक और तुलनात्मक शैली से प्रस्तुत किया है, वह वस्तुत अभिनन्दनीय ही नही, किन्तु अनुकरणीय भी है।

साथ ही अस्वस्थ होते हुए भी श्रद्धेय उपाध्याय श्री जी ने भगवान आदिनाथ के महाप्राण व्यक्तित्व के विचार-विन्दु को नवीन दृष्टि-परिवेश मे उपस्थित कर जो महत्वपूर्ण प्रस्तावना से ग्रन्थ की श्रीवृद्धि की है, उसके लिए भी हम उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञ है।

सन्मति ज्ञानपीठ के महत्वपूर्ण प्रकाशन आज साहित्य क्षेत्र मे अत्यधिक आदर एव गौरव प्राप्त कर रहे हैं। हमे विश्वास है कि यह प्रकाशन भी हमारी उसी गौरवमयी परम्परा की एक कडी बनेगा। पाठक इसे अधिकाधिक अपनाकर हमारा उत्साह बढायेंगे। इसी आशा के साथ····

मन्त्री

सन्मति ज्ञानपीठ

●

लेखक की कलम से

●

भारतवर्ष के जिन महापुरुषो का मानव जाति के विचारो पर स्थायी प्रभाव पडा है उनमे भगवान् ऋषभदेव का प्रमुख स्थान है। उनके अनलोद्धत व्यक्तित्व और असाधारण व अभूतपूर्व कृतित्व की छाप जन-जीवन पर बहुत ही गहरी है। आज भी अनेको व्यक्तियो का जीवन उनके निर्मल विचारो से प्रभावित है। उनके हृदयाकाश मे चमकते हुए आकाशदीप की तरह वे सुशोभित हैं। जैन व जैनेतर साहित्य उनकी गौरव-गाथा से छलक रहा है। उनका विराट् व्यक्तित्व सम्प्रदायवाद, पंथवाद से उन्मुक्त है। वे वस्तुत मानवता के कीर्तिस्तम्भ हैं।

भगवान् ऋषभदेव का समय भारतीय ज्ञात इतिहास मे नही आता। उनके अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए आगम व आगमेतर प्राच्य साहित्य ही प्रबल प्रमाण है। जैन परम्परा की दृष्टि मे भगवान् ऋषभदेव वर्तमान अवसर्पिणी काल के तृतीय आरे के उपसहार काल मे हुए है।[1] चौवीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर और ऋषभदेव के बीच का समय असंख्यात वर्ष का है।[2]

वैदिक दृष्टि से भी ऋषभदेव प्रथम सतयुग के अन्त मे हुए है और राम व कृष्ण के अवतारों से पूर्व हुए हैं।[3]

जैन साहित्य मे कुलकरो की परम्परा मे नाभि, और ऋषभ का जैसा स्थान है, वैसा ही स्थान बौद्ध परम्परा मे महासमन्त का है।[4] सामयिक परिस्थिति भी दोनो मे समान रूप से ही चित्रित हुई है। सम्भवत बौद्ध परम्परा मे ऋषभदेव का ही अपर नाम महासमन्त हो ?

---

१. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
   (ख) कल्पसूत्र
२. कल्पसूत्र
३. जिनेन्द्र मत दर्पण भाग० १ पृ० १०
४ दीघनिकाय अग्गञ्ञसुत्त भाग–३
   (ख) जैन साहित्य का वृहद् इतिहास भाग० १ प्रस्तावना पृ० २२

ऋषभदेव का चरित्र जिस प्रकार जैन और वैदिक साहित्य मे विस्तार से चित्रित किया गया है, वैसा बौद्ध साहित्य मे नही हुआ। केवल कही-कही पर नाम निर्देश किया गया है। जैसे धम्मपद की 'उसभ पवरं वीर''[५] गाथा मे अस्पष्ट रीति मे ऋषभदेव और महावीर का उल्लेख हुआ है।[६] बौद्धाचार्य धर्म कीर्ति ने सर्वज्ञ आप्त के उदाहरण मे ऋषभ और वर्द्धमान महावीर का निर्देश किया है और बौद्धाचार्य आर्य देव भी ऋषभदेव को ही जैन धर्म का आद्य-प्रचारक मानते हैं।

आधुनिक प्रतिभासम्पन्न मूर्धन्य विचारक भी यह सत्य तथ्य निसकोच रूप से स्वीकारने लगे है कि भगवान् ऋषभदेव से ही जैन धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है।

डाक्टर हर्मन जेकोबी लिखते है कि इसमे कोई प्रमाण नही कि पार्श्वनाथ जैन धर्म के सस्थापक थे। जैनपरम्परा प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव को जैन धर्म का सस्थापक मानने मे एक मत है। इस मान्यता मे ऐतिहासिक सत्य की अत्यधिक सम्भावना है।[७]

प्रस्तुत प्रश्न पर चिन्तन करते हुए डाक्टर राधाकृष्णन् लिखते है कि "जैन परम्परा ऋषभदेव से अपने धर्म की उत्पत्ति का कथन करती है, जो बहुत ही शताब्दियो पूर्व हुए हैं। इस बात के प्रमाण पाये जाते है कि ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी मे प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव की आराधना होती थी। इसमे कोई सन्देह नही कि जैन धर्म वर्द्धमान महावीर और पार्श्वनाथ से भी बहुत पहले प्रचलित था।"

"यजुर्वेद मे ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीनो तीर्थकरो के नाम आते है। भागवत पुराण भी इस बात का समर्थन करता है कि ऋषभदेव जैन धर्म के सस्थापक थे।"[८]

---

५ धम्मपद ४।२२

६ इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टली भाग ३, पृ० ४७३-७५

७ इण्डि० एन्डि० जिल्द ९, पृ० १६३

(ख) जैन साहित्य का इतिहास—पूर्वपीठिका पृ० ५

८. भारतीय दर्शन का इतिहास—डाक्टर राधाकृष्णन जिल्द १, पृ० २८७

डाक्टर स्टीवेन्सन,[९] और जयचन्द्र विद्यालंकार[१०] प्रभृति अन्य अनेक[११] चिन्तकों का भी यही अभिमत रहा है।

भगवान् ऋषभदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया गया है। मेरा स्वयं का विचार और भी अधिक विस्तार से अन्वेषणाप्रधान लिखने का था किन्तु समयाभाव और साधनाभाव के कारण वह सम्भव नहीं हो सका, जो कुछ भी लिख गया हूँ, वह पाठकों के सामने है।

चन्दन बाला श्रमणी संघ की अध्यक्षा, परम विदुषी स्वर्गीया महासती श्री सोहन कुँवर जी म० को मैं भुला नहीं सकता, उनके त्याग-वैराग्यपूर्ण पावन प्रवचन को श्रवण कर मैंने सद्गुरुवर्य, गम्भीर तत्त्वचिन्तक श्री पुष्कर मुनिजी म० के पास जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण की। और इस प्रकार वे मेरे जीवन-महल के निर्माण में नींव की ईंट के रूप में रही हैं। उनकी आद्य प्रेरणा से ही प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन हुआ है।

परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य के प्रति किन शब्दों में आभार प्रदर्शित करूँ, यह मुझे नहीं सूझ रहा है। जो कुछ भी इसमें श्रेष्ठता है वह उन्हीं के दिशा-दर्शन और असीम कृपा का प्रतिफल है।

मेरी विनम्र प्रार्थना को सन्मान देकर श्रद्धेय उपाध्याय कविरत्न श्री अमर चन्द्र जी म० ने स्वस्थ न होने पर भी महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना लिख कर ग्रन्थ की श्रीवृद्धि की है और साथ ही पुस्तक के संशोधन, एवं परिमार्जन से जिस आत्मीय भाव से मुझे अनुगृहीत किया है, उसे व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द मेरे पास नहीं हैं।

स्नेहमूर्ति श्री हीरामुनि जी, साहित्यरत्न, शास्त्री गणेश मुनि जी, जिनेन्द्र मुनि, रमेश मुनि और राजेन्द्र मुनि प्रभृति मुनि-मण्डल का स्नेहास्पद व्यवहार, लेखन कार्य में सहायक रहा है। ज्ञात और अज्ञात रूप में जिन महानुभावों का तथा ग्रन्थों का सहयोग लिया गया है, उन सभी के प्रति हार्दिक आभार अभिव्यक्त करता हूँ, और भविष्य में उन सभी के मधुर सहयोग की अभिलाषा रखता हूँ।

आचार्य धर्मसिंह जैन धर्म स्थानक
दरियापोल अमदाबाद–१ — देवेन्द्र मुनि
दि० ३–४–६७ आदिनाथ जयन्ती

---

९ कल्पसूत्र की भूमिका — डा० स्टीवेन्सन
१०. भारतीय इतिहास की रूपरेखा — जयचन्द्र विद्यालंकार पृ० ३४८
११ (क) जैन साहित्य का इतिहास — पूर्वपीठिका पृ० १०८
(ख) हिन्दी विश्वकोष भाग० ३ पृ० ४४४

त्वं देव जगता ज्योति,
त्व देव जगता गुरु. ।
त्व देव जगता धाता,
त्व देव जगता पति ।।

—आचार्य जिनसेन

प्र स्ता व ना

•

अनन्त असीम व्योममण्डल से भी विराट् ! अगाध अपार महासागर से भी विशाल ! एक अद्भुत, एक अद्वितीय ज्योतिर्धर व्यक्तित्व ! जिधर से भी देखिए, जहाँ भी देखिए, और जब भी देखिए—सहस्र-सहस्र, लक्ष-लक्ष, कोटि-कोटि, असख्य अनन्त प्रकाश किरणें विकीर्ण होती दीखेंगी। महाकाल इतिहास की गणना से परे हो गया, सख्यातीत दिन और रात गुजरते चले गए, परन्तु वह ज्योति न बुझी है, न बुझ सकेगी।

भगवान् ऋषभदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व को शब्दो की सीमा मे नहो, बाँधा जा सकता। प्राकृत मे, सस्कृत मे, अपभ्र श मे, नानाविध अन्यान्य लोक-भाषाओ मे ऋषभदेव के अनेकानेक जीवन चरित्र लिखे गए है, लिखे जा रहे हैं, परन्तु उनके विराट् एव भव्य जीवन की सम्पूर्ण छवि कोई भी अकित नही कर सका है। अनन्त आकाश मे गरुड—जैसे असख्य विहग जीवन-भर उडान भरते रहे हैं, पर आकाश की इयत्ता का अता-पता न किसी को लगा है, न लगेगा। क्या लौकिक और क्या लोकोत्तर, क्या भौतिक और क्या आध्यात्मिक, क्या सामाजिक और क्या राष्ट्रीय, क्या नैतिक और क्या धार्मिक—सभी दृष्टियो मे उनका जीवन दिव्य है, महतोमहीयान् है। हम जीवन-निर्माण की दिशा मे जब भी और जो कुछ भी पाना चाहे, उनके जीवन पर से पा सकते है। आवश्यकता है केवल देखने वाली दृष्टि की और उस दृष्टि को सृष्टि के रूप मे अवतरित करने की।

भगवान् ऋषभदेव मानवसस्कृति के आदि सस्कर्ता है, आदि निर्माता हैं। पौराणिक गाथाओ के आधार पर, वह काल, आज भी हमारे मानस-चक्षुओ के समक्ष है, जब कि मानव मात्र आकृति से ही मानव था। अपने क्षुद्र देह की सीमा मे बँधा हुआ एक मानवाकार पशु ही तो था, और क्या ? न उसे लोक का पता था, न परलोक का। न उसे समाज का पता था, न परिवार का। न उसे धर्म का पता था, न अधर्म का। बिल्कुल कटा हुआ-सा अकेला

शून्य जीवन। पिता-पुत्र, भाई-बहिन, पति-पत्नी—जैसा कुछ भी लोक-व्यवहार नही, कोई भी मर्यादा नही। साथ रहने वाली नारी को हम भले ही आज की शिष्ट भाषा मे पत्नी कह दे, परन्तु सचाई तो यह है कि वह उस युग मे एकमात्र नारी थी, स्त्री थी, और कुछ नही। स्त्री केवल देह है और पत्नी इससे कुछ ऊपर है। पति-पत्नी दो शरीर नही है, जो वासना के माध्यम से एक दूसरे के साथ हो लेते है। वह एक सामाजिक एव नैतिक भाव है, जो कर्तव्य की स्वर्णरेखाओ से मर्यादाबद्ध है। और यह सब उस आदि युग मे कहाँ था? वन की सभ्यता। अकेला व्यक्तित्व! भूख लगी तो इधर-उधर गया, कन्द-मूल फल खा आया। प्यास लगी तो झरनो का बहता पानी पी आया। अन्य किसी के लिए न लाना और न ले जाना। न भविष्य के लिए ही कुछ सग्रह। अतीत और अनागत से कट कर केवल वर्तमान मे आबद्ध। अपने ही पेट की क्षुधा-पिपासा से घिरा केवल व्यक्तिनिष्ठ जीवन! प्रकृति पर आश्रित, वृक्षो से परिपोषित! कर्तृत्व नही, केवल भोक्तृत्व! श्रम नही, पुरुषार्थ नही। न अपने पैरो खडा होना, और न अपने हाथो कुछ करना। मनुष्य के शरीर मे नीचे क्षुधातुर पेट और ऊपर खाने वाला मुख। बीच मे हाथ पैरो का कोई खास काम नही, उत्पादक के रूप मे। यह चित्र है, भगवान् ऋषभदेव से पूर्व मानव-सभ्यता का।

भगवान् ऋषभदेव के युग मे यह वन-सभ्यता बिखर रही थी। जनसंख्या बढने लगी। उपभोक्ता अधिक होते जा रहे थे, परन्तु उनकी तुलना मे उपभोगसामग्री अल्प। ऐसी स्थिति मे सघर्ष अवश्यम्भावी था, और वह हुआ भी। क्षुधातुर जनता वृक्षो के बँटवारे के लिए लडने लगी। सब ओर आपाधापी मच गई। भगवान् ऋषभदेव ने उक्त विषम स्थिति मे अभावग्रस्त जनता का योग्य नेतृत्व किया। उन्होने घोषणा की—अकर्म भूमि का युग समाप्त हो रहा है, अब जनसमाज को कर्मभूमि युग का स्वागत करना चाहिए। प्रकृति रिक्त नही है। अब भी उसके अन्तर मे अक्षय भण्डार छिपा पडा है। पुरुष हो, पुरुषार्थ करो। अपने मन मस्तिष्क से सोचो-विचारो और उसे हाथो से मूर्तरूप दो। श्रम मे ही श्री है, अन्यत्र नही। एक मुख है खाने वाला, तो हाथ दो हैं खिलाने वाले। भूखो मरने का प्रश्न ही कहाँ है? अपने श्रम के बल पर अभाव को भाव मे भर दो। भगवान् ऋषभदेव ने कृषि का सूत्रपात किया। अनेकानेक शिल्पो की अवतारणा की। कृषि और उद्योग मे वह अद्भुत सामजस्य स्थापित किया कि धरती पर स्वर्ग उतर आया। कर्मयोग की वह

रसधारा बही कि उजड़ते और वीरान होते जन-जीवन में नव और नव-वसन्त खिल उठा, महक उठा। हे मेरे देव, यदि उस समय तुम न होते तो पता नहीं, इस मानव जाति का क्या हुआ होता? होता क्या, मानव-मानव एक दूसरे के लिए दानव हो गया होता, एक दूसरे को जंगली जानवरों की तरह खा गया होता। "बुभुक्षित: किं न करोति पापम्?"

भौतिक वैभव एवं ऐश्वर्य के उत्कर्ष में एक खतरा है, वह यह कि मनुष्य स्वयं को भूल जाता है, अन्धेरे में भटक जाता है। भोग में भय छिपा है, "भोगे रोगभयम्।" तन का रोग ही नहीं, मन का रोग भी। मन का रोग तन के रोग से भी अधिक भयावह है। बढ़ती हुई मन की विकृतियाँ मानव को कहीं का भी नहीं छोड़तीं—न घर का न घाट का। भगवान् ऋषभदेव ने इस तथ्य को भी ध्यान में रखा। उनका गृहसंसार से महाभिनिष्क्रमण अपनी अन्तरात्मा को परिमार्जित एवं परिष्कृत करने के लिए तो था ही, साथ ही सार्वजनीन हित का भाव भी उसके मूल में था। महापुरुषों की साधना स्व-परकल्याण की दृष्टि से द्व्यर्थक होती है—"एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा।" भगवान् ऋषभदेव ने शून्य निर्जन वनों में, एकान्त गिरि-निकुञ्जों में, भयावह श्मशानों में, गगन-चुम्बी पर्वतों की शान्त नीरव गुफाओं में तप साधना की। वह तप जहाँ बाह्य रूप में ऊँचा और बहुत ऊँचा था वहाँ आभ्यन्तर रूप में गहरा और बहुत गहरा भी था। वे शरीर से परे, इन्द्रियों से परे और मन से परे होते गए—होते गए, और अपने आपके निकट, अपने शुद्ध—निरञ्जन—निर्विकार स्वरूप के समीप पहुँचते गए—पहुँचते गए। और लम्बी साधना के बाद एक दिन वह मंगल क्षण आया कि अन्तर में चैतन्य ज्योति का अनन्त अक्षय-अव्याबाध महाप्रकाश जगमगा उठा, स्वमंगल के साथ ही विश्वमंगल का द्वार खुल गया। भगवान् ऋषभदेव तीर्थङ्कर बन गए। समवसरण के रूप में उनकी अमृतवाणी का वह दिव्यनाद गूँजा कि जन-जीवन में फैलता आ रहा अन्धकार छिन्न-भिन्न हो गया, सब ओर आध्यात्मिक भावों का दिव्य आलोक आलोकित हो गया।

भगवान् ऋषभदेव का जीवन समन्वय का जीवन है। वह मानवजाति के समक्ष इहलोक का आदर्श प्रस्तुत करता है, परलोक का आदर्श प्रस्तुत करता है, और प्रस्तुत करता है—इहलोक-परलोक से परे लोकोत्तरता का आदर्श। उनका जीवन-दर्शन उभयमुखी है। जहाँ वह बाह्यजीवन को परिष्कृत एवं विकसित करने की बात करता है, वहाँ अन्तर्जीवन को भी निकृष्ट पथ से प्रकृष्ट

रखने का परामर्श देता है। उनका अध्यात्म भी निष्क्रिय, जड एव एकांगी नही है, वह सचेतन है, प्राणवान है, और देश, काल एव व्यक्ति की भूमिकाओ को यथार्थ के धरातल पर स्पर्श करता है। इस सन्दर्भ मे उनके अपने ही जीवन के एक दो प्रसङ्ग है।

साधना-काल मे जब भगवान जगलो एव पहाडो के सूने अचलो मे एकान्त साधनारत रह रहे थे, तो प्रारम्भ मे एक वर्ष तक उन्होने अन्न-जल ग्रहण नही किया, अनशनतप की लम्बी साधना चलती रही। प्रभु के लिए तो यह सहज था, परन्तु साथ मे दीक्षित होने वाले चार सहस्र साधक विचलित हो गए। वे भूख की वेदना को अधिक काल तक सहन न कर सके। भगवान् की देखादेखी कुछ दूर तक तो अनशन के पथ पर साथ-साथ चले, परन्तु गजराज की गति को कोई पकडे भी तो कहाँ तक पकडे ? सब के सब पिछडते चले गये, कोई कही तो कोई कही। पिछडे ही नही, पथ-भ्रष्ट भी हो गये। विवेकज्ञान के अभाव मे ऐसा ही कुछ हुआ करता है—देखा-देखी साधे जोग, छीजे काया बाढ़ै रोग। भगवान् ऋषभदेव ने वर्ष समाप्त होते-होते जब यह देखा तो उनका चिन्तन मोड़ ले गया। उन्होने आहार ग्रहण करने का सकल्प किया, अपने लिए उतना नही, जितना कि भविष्य के साधको को साधना के मध्यम मार्ग की दृष्टि प्रदान करने के लिए। भगवान् के तत्कालीन अनक्षर चिन्तन को अक्षरबद्ध किया है—जैन दर्शन के सुप्रसिद्ध तत्त्वचिन्तक महामनीषी आचार्य जिनसेन ने, अपने महापुराण मे—

> न केवलमयं कायः, कर्शनीयो मुमुक्षुभिः।
> नाऽप्युत्कटरसैः पोष्यो, मृष्टैरिष्टैश्च वल्मनैः ॥५॥
> वशे यथा स्युरक्षाणि, नोत धावन्त्यनूत्पथम्।
> तथा प्रयतितव्यं स्याद्, वृत्तिमाश्रित्य मध्यमाम् ॥६॥
> दोषनिर्हरणायेष्टा, उपवासाद्युपक्रमाः।
> प्राणसन्धारणायायम्, आहारः सूत्रदर्शितः ॥७॥
> कायक्लेशो मतस्तावन्, न संक्लेशोऽस्ति यावता।
> सक्लेशे ह्यसमाधानं, मार्गात् प्रच्युतिरेव च ॥८॥
>
> —पर्व २०

—मुमुक्षु साधको को यह शरीर न तो केवल कृश एव क्षीण ही करना चाहिए और न रसीले एवं मधुर मन चाहे भोजनो से इसे पुष्ट ही करना चाहिए।

—जिस तरह भी ये इन्द्रियाँ साधक के वशवर्ती रहें, कुमार्ग की ओर न दौडे, उसी तरह मध्यम वृत्ति का आश्रय लेकर प्रयत्न करना चाहिए।

—दोषो को दूर करने के लिए उपवास आदि का उपक्रम है, और प्राण धारणा के लिए आहार का ग्रहण है, यह जैन सिद्धान्तसम्मत साधना सूत्र है।

—साधक को कायक्लेश तप उतना ही करना चाहिए, जितने से अन्तर मे सक्लेश न हो। क्योकि सक्लेश हो जाने पर चित्त समाधिस्थ नही रहता, उद्विग्न हो जाता है, जिसका किसी न किसी दिन यह परिणाम आता है कि साधक पथभ्रष्ट हो जाता है।

भगवान् ऋषभ के द्वितीय पुत्र महाबली बाहुबली, युद्ध मे अपने ज्येष्ठ बन्धु भरतचक्र-वर्ती को पराजित करके भी, राज्यासन से विरक्त हो गए। कायोत्सर्ग मुद्रा मे अचल हिमाचल की तरह अविचल एकान्त वनप्रदेश मे खडे हो गए। एक वर्ष पूरा होने को आया, न अन्न का एक दाना और न पानी की एक बूँद। न हिलना, न डुलना। सचेतन भी अचेतन की तरह सर्वथा निष्प्रकम्प। कथाकारो की भाषा मे मस्तक पर के केश बढते-बढते जटा हो गए और उनमे पक्षी नीड बनाकर रहने लगे। घुटनो तक ऊँचे मिट्टी के वल्मीक चढ गए, और उनमे विषधर सर्प निवास करने लगे। कभी-कभी सर्प वल्मीक से निकलते, सरसराते ऊपर चढ जाते और समग्र शरीर पर लीला-विहार करते रहते। भूमि से अकुरित लताएँ पदयुगल को परिवेष्टित करती हुई भुजयुगल तक लिपट गई। इतना होने पर भी कैवल्य नही मिला, नही मिला। तप का ताप चरमबिन्दु पर पहुँच गया, फिर भी अन्तर का कल्मष गला नही, मन का मालिन्य धुला नही। इतनी अधिक उग्र, इतनी अधिक कठोर साधना प्रतिफल की दिशा मे शून्य क्यो, यह प्रश्न हर साधक के मन पर मडराने लगा। भगवान् ऋषभदेव ने ब्राह्मी और सुन्दरी को भेजा, इसलिए कि यह बाहर से अन्दर मे प्रवेश करे, अन्दर के अहं को तोड गिराए। ब्राह्मी और सुन्दरी के माध्यम से भगवान् ऋषभदेव का सन्देश मुखरित हुआ।

"आज्ञापयति तातस्त्वां, ज्येष्ठार्य ! भगवानिदम्।
हस्तिस्कन्धाधिरूढानाम् उत्पद्येत न केवलम्॥"

—त्रिषष्टि० १।६।७८८

—हे आर्य, पूज्य पिता भगवान् ऋषभदेव तुम्हे सूचित करते है कि हाथी पर चढे हुओ को केवल ज्ञान नही हो सकता।

कैसा हाथी ? 'मैं वड़ा हूँ, अपने से छोटे बन्धुओ को कैसे वन्दन करू"—यह अहङ्कार का हाथी। इसी हाथी पर से नीचे उतरना है। बाहुवली के चिन्तन न अह से निरहं की ओर मोड़ लिया और ज्योंही वदन के लिए कदम उठाया कि केवल ज्ञान का महाप्रकाश जगमगा उठा। उक्त उदाहरण से क्या ध्वनित होता है ? यही कि भगवान् ऋषभदेव साधना के केवल बाह्य परिवेश तक ही प्रतिवद्ध नही थे। उनकी साधनाविषयक प्रतिवद्धता वाहर की नही, अन्दर की थी। उनकी साधना का मुख्य आधार तन नही, मन था। मन भी क्या, अन्तश्चैतन्य था। और भगवान् का यह दिव्य दर्शन जैनसाधना का वीज मन्त्र हो गया। आदिकाल से ही जैन दर्शन तन का नही, मन का दर्शन है, अन्तश्चैतन्य का दर्शन है। वह साधना के बाह्य पक्ष को स्वीकारता है अवश्य, परन्तु अमुक सीमा तक ही। बाह्य सान्त है, अन्तर ही अनन्त है। अत अनन्त की उपलब्धि वाहर मे नही, अन्दर मे है। जब-जब साधक वाहर भटकता है, वाहर को ही सब कुछ मान बैठता है, तब-तब भगवान् ऋषभदेव के जीवन-प्रसङ्ग साधक को अन्दर की ओर उन्मुख करते है, हठ योग से सहज योग की ओर अग्रसर करते हैं।

भगवान् ऋषभदेव की निर्मल धर्मचेतना आज की भाषा मे कहे जाने वाले पन्थो—मतो—सम्प्रदायो से सर्वथा अतीत थी। उनका सत्य इन सब क्षुद्र परिवेशो मे वद्ध नही था। जब कभी प्रसग आया, उन्होने सत्य के इस मर्म को स्पष्ट किया है—विना किसी छिपाव और दुराव के। राजकुमार मरीचि भगवान् के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण कर लेता है, पर समय पर ठीक तरह साध नही पाता है। तितिक्षा की कमी, परीषहो के आक्रमण से विचलित हो गया, तो पथ-च्युत हो गया, परिव्राजक हो गया। इस पर, सम्भव है, और सबने धिक्कारा हो, परन्तु भगवान् सर्वतोभावेन तटस्थ रहे। मरीचि जैन श्रमण-परम्परा के विपरीत परिव्राजक का वाना लिए समवसरण के द्वार पर बैठा रहता, परन्तु इधर से कोई ननुनच नही। इतना ही नही, एक वार भरत चक्रवर्ती के प्रश्न के समाधान मे घोषणा की कि मरीचि वर्तमान कालचक्र का अन्तिम तीर्थङ्कर होगा। श्रमण परम्परा से उत्प्रव्रजित व्यक्ति के लिए भगवान् की यह घोषणा एक गम्भीर अर्थ की ओर सकेत करती है। वेष और पन्थ की सीमाएँ सत्य की सीमा को काट नही सकती। सत्य क्षीरसागर के जल की भाँति सदा निर्मल एव मधुर होता है, चाहे वह किसी भी पात्र मे हो, और जब भी कभी हो। वेष और पन्थ की सीमाओं को लाँघ कर व्यक्ति मे आज नही, तो कल अभिव्यक्त होने वाले सत्य का इस प्रकार उद्घाटन करना, भगवान्

ऋषभदेव की निर्मल सत्यनिष्ठा का एक अद्भुत उदाहरण है। मैं अनुभव करता हूँ, यदि कोई और होता तो ऐसी स्थिति मे कुछ और ही कहता या मौन रहता। परन्तु भगवान् ऋषभदेव, देव क्या, देवाधिदेव थे। जिन्होने पथभ्रष्ट मरीचि के धूमिल वर्तमान को नही, किन्तु उज्ज्वल भविष्य को उजागर किया और यह सत्य प्रमाणित किया कि पतित से पतित व्यक्ति भी घृणापात्र नही है। क्या पता, वह कहाँ और कब जीवन की ऊँची-से-ऊँची बुलन्दियो को छूने लगे, आध्यात्मिक पवित्रता को पूर्णरूपेण आत्मसात् करने लगे। क्या आज हम उक्त घटना पर से अपने प्रतिपक्षी खेमे के लोगो के प्रति सद्भावना का भावादर्श नही ले सकते ?

भगवान् ऋषभदेव जीवन के हर कोण पर उसी प्रकार दिव्य है, जिस प्रकार वैडूर्यरत्न। उनका जीवन आज की विषम परिस्थितियो मे भी अपने निर्मल चरित्र की आभा बिखेर रहा है। सत्य की खोज मे चल रहे हर यात्री के मन पर एक गहरी छाप डाल रहा है। उनका स्मरण होते ही तमसाच्छन्न जन-मानस मे एक दिव्य एव सुखद प्रकाश फैल जाता है। उनके जीवन चरित्र मानव चरित्र के निर्माण के लिए हर युग मे प्रेरणा स्रोत रहे हैं और रहेगे। यही कारण है कि महाकाल के प्रवाह मे कोटि-कोटि दिन और रात बह गये, परन्तु उनके जीवनलेखन की परम्परा अब भी गगा की धारा के समान प्रवहमान है।

मुझे हार्दिक हर्ष है कि भगवान ऋषभदेव के जीवनचरित्रो के मुक्ताहार मे एक और सुन्दर मुक्ता पिरोया गया है। हमारे तरुण साहित्यकार श्री देवेन्द्र मुनि ने भगवान ऋषभदेव के चरणकमलो मे अपनी भावभरी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है, और इस रूप मे भगवान आदिनाथ का एक सुन्दर अनुशीलनात्मक जीवन चरित्र लिखा है।

श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के प्राचीन ग्रन्थो के आधार पर लिखा गया यह प्रमाणपुरःसर जीवनचरित्र, चरित्रग्रन्थो के सदर्भ मे नवीन शैली प्रस्तुत करता है। देवेन्द्र जी का बौद्धिक उन्मेष जो नवीन आलोक पा रहा है, उसका स्पष्ट सकेत उनकी यह कृति है।

मैं शुभाशा करता हू, भविष्य उनका साथ दे और वे अपने अध्ययन-अनुशीलन एव चिन्तन को और अधिक व्यापक बनाते हुए, भविष्य मे और भी अधिक सुन्दर एव विचार पूर्ण कृतियो से जैन साहित्य की श्रीवृद्धि कर यशस्वी हो।

जैन स्थानक
आगरा
१० अप्रेल, १९६७

—उपाध्याय अमर मुनि

अ नु क्र म
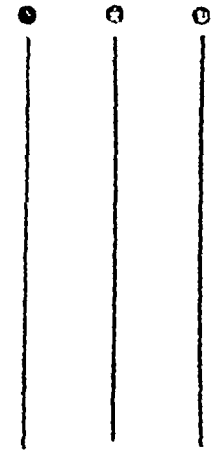
ऋषभदेव : एक परिशीलन
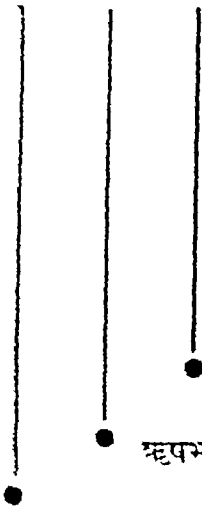
प्रथम खण्ड

ऋषभ जीवन की पृष्ठ भूमि

परिचय-रेखा

●

- श्रमण संस्कृति
- एक फुलवाडी
- आस्तिक्य
- सुनहरे चित्र
- धन्ना सार्थवाह
- उत्तरकुरु मे मनुष्य
- सौधर्म देवलोक
- महाबल
- ललिताङ्ग देव
- वज्रजंघ
- युगल
- सौधर्म कल्प
- जीवानन्द वैद्य
- अच्युत देवलोक
- वज्रनाभ
- सर्वार्थ सिद्ध
- श्री ऋषभदेव

श्री ऋषभपूर्वभव : एक विश्लेषण

•

श्रमण संस्कृति

श्रमण सस्कृति आर्यावर्त की एक विशिष्ट और महान् सस्कृति है, जो अज्ञात काल से ही विश्व को आध्यात्मिक विचारो का पाथेय प्रदान करती रही है। वे विमल विचार काल्पनिक वायवीय न होकर जीवनप्रसूत है, अनुभवपरिचालित है। डाक्टर एल पी टेसीटरी के शब्दो मे—"इसके मुख्य तत्त्व विज्ञान-शास्त्र के आधार पर रचे हुए है, यह मेरा अनुमान ही नहीं बल्कि अनुभवमूलक पूर्ण दृढविश्वास है कि ज्यो-ज्यो पदार्थविज्ञान उन्नति करता जायेगा त्यो-त्यो जैन धर्म के सिद्धान्त सत्य सिद्ध होते जायेगे।"

एक फुलवाड़ी

श्रमण सस्कृति एक अद्भुत फुलवाडी है, जिसमे भक्तियोग की भव्यता, ज्ञानयोग का गौरव, कर्मयोग की कठिनता, अध्यात्म योग का आलोक, तत्त्वज्ञान की तलस्पर्शिता, दर्शन की दिव्यता, कला की कमनीयता, भाषा की प्राजलता, भावो की गम्भीरता और चरित्र-चित्रण के फूल खिल रहे है, महक रहे है, जो अपनी सहज सलोनी सुवास से जन-जन के मन को मुग्ध कर रहे है।

आस्तिक्य

श्रमण-सस्कृति की विचारधारा का आधार आस्तिकता है। आस्तिक और नास्तिक शब्दो को सुधी विज्ञो ने जिस प्रकार विभिन्न विचारो मे सजोया है, पिरोया है, उससे वह चिरन्तन पहेली बनगया है। प्रस्तुत पहेली को संस्कृत व्याकरण के समर्थ आचार्य पाणिनि ने

परिचय-रेखा

- श्रमण संस्कृति
- एक फुलवाडी
- आस्तिक्य
- सुनहरे चित्र
- धन्ना सार्थवाह
- उत्तरकुरु मे मनुष्य
- सौधर्म देवलोक
- महाबल
- ललिताङ्ग देव
- वज्रजंघ
- युगल
- सौधर्म कल्प
- जीवानन्द वैद्य
- अच्युत देवलोक
- वज्रनाभ
- सर्वार्थ सिद्ध
- श्री ऋषभदेव

श्री ऋषभपूर्वभव : एक विश्लेषण

•

श्रमण संस्कृति

श्रमण संस्कृति आर्यावर्त की एक विशिष्ट और महान् संस्कृति है, जो अज्ञात काल से ही विश्व को आध्यात्मिक विचारो का पाथेय प्रदान करती रही है। वे विमल विचार काल्पनिक वायवीय न होकर जीवनप्रसूत है, अनुभवपरिचालित है। डाक्टर एल पी टेसीटरी के शब्दो मे—"इसके मुख्य तत्त्व विज्ञान-शास्त्र के आधार पर रचे हुए है, यह मेरा अनुमान ही नही बल्कि अनुभवमूलक पूर्ण दृढविश्वास है कि ज्यो-ज्यो पदार्थविज्ञान उन्नति करता जायेगा त्यो-त्यो जैन धर्म के सिद्धान्त सत्य सिद्ध होते जायेगे।"

एक फुलवाड़ी

श्रमण संस्कृति एक अद्भुत फुलवाडी है, जिसमे भक्तियोग की भव्यता, ज्ञानयोग का गौरव, कर्मयोग की कठिनता, अध्यात्म योग का आलोक, तत्त्वज्ञान की तलस्पर्शिता, दर्शन की दिव्यता, कला की कमनीयता, भाषा की प्राजलता, भावो की गम्भीरता और चरित्र-चित्रण के फूल खिल रहे है, महक रहे है, जो अपनी सहज सलोनी सुवास से जन-जन के मन को मुग्ध कर रहे है।

आस्तिक्य

श्रमण-संस्कृति की विचारधारा का आधार आस्तिकता है। आस्तिक और नास्तिक शब्दो को सुधी विज्ञो ने जिस प्रकार विभिन्न दिशाओ मे सजोया है, पिरोया है, उससे यह निश्चित पहेली बनगया है। प्रस्तुत पहेली को संस्कृत व्याकरण के समर्थ आचार्य पाणिनि के

"अस्तिनास्ति-दिष्टं मतिः"[1] सूत्र के रहस्य का उदघाटन करते हुए भट्टोजी दीक्षित ने बडी खूबी के साथ सुलझाया है। उन्होने पूर्वाग्रहरहित सूत्र का निष्कर्ष निर्भीकता के साथ प्रकाशित करते हुए कहा—"जो निश्चित रूप से परलोक व पुनर्जन्म को स्वीकारता है वह आस्तिक है और जो उसे स्वीकारता नही वह नास्तिक है।"[2] अधिक स्पष्ट शब्दो मे कहा जाए तो "पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म और इस प्रकार आत्मा के नित्यत्व मे निष्ठा रखना ही आस्तिक्य है। आस्तिक के अन्तर्मानस मे ये विचार-लहरे सदा तरगित होती है कि 'मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, प्रकृत चोले का परित्याग कर कहाँ जाऊँगा और मेरी जीवन-यात्रा का अन्तिम पडाव कहाँ होगा ?'[3] वह आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारता है और आत्मा की सस्थिति के स्थान लोक को भी स्वीकारता है, लोक मे इतस्तत परिभ्रमण के कारण कर्म को भी स्वीकारता है और कर्मो से मुक्त होने के साधनरूप क्रिया को भी।[4] श्रमण-सस्कृति का यह दृढ मन्तव्य है कि अनादि अनन्त काल से आत्मा विराट् विश्व मे परिभ्रमण कर रहा है। नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगति मे इधर-उधर घूम रहा है। गणधर गौतम की जिज्ञासा का

---

१ अष्टाध्यायी, अध्याय ८, पाद ४, सू० ६०

२. अस्ति परलोक इत्येवमतिर्यस्य स आस्तिक, नास्तीतिमतिर्यस्य स नास्तिक। —सिद्धान्तकौमुदी (निर्णय सागर, बम्बई) पृ० २७३

३ (क) अत्थि मे आया उववाइए ? नत्थि मे आया उववाइए ? के अह आसी ? के वा इओ चुए इह पेच्चा भविस्सामि ?
—आचाराग १।१।१। सू० ३

(ख) कस्त्व कोऽह कुत आयात,
का मे जननी को मे तात ?
इति परिभावय सर्वमसार,
सर्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम् ॥
—चर्पटपजरिका—आचार्य शकर

४. से आयावादी, लोगावादी, कम्मावादी, किरियावादी।
—आचाराग श्रुत० १, अ० १ उ० १, सू० ५

समाधान करते हुए भगवान् श्री महावीर ने कहा—"ऐसा कोई भी स्थल नहीं, जहाँ यह आत्मा न जन्मा हो", और ऐसा कोई भी जीव नहीं, जिसके साथ मातृ, पितृ, भ्रातृ, भगिनी, भार्या, पुत्र-पुत्री—रूप सम्बन्ध न रहा हो।[६] गौतम को सम्बोधित कर भगवान् श्री महावीर ने कहा—हे गौतम! तुम्हारा और हमारा सम्बन्ध भी आज का नहीं, चिरकाल पुराना है। चिरकाल से तू मेरे प्रति स्नेह सद्भावना रखता रहा है। मेरे गुणों का उत्कीर्तन करता रहा है। मेरी सेवा भक्ति करता रहा है, मेरा अनुसरण करता रहा है। देव व मानव भव मे एक बार नहीं, अपितु अनेक बार हम साथ रहे है।[७] स्पष्ट है कि साधारण सांसारिक आत्मा की तरह ही श्रमण संस्कृति के आराध्यदेव तीर्थङ्कर व बुद्ध भी, तीर्थङ्कर व बुद्ध बनने के पूर्व, नाना गतियो मे भ्रमण करते रहे है। श्रमण संस्कृति ने ब्राह्मणसंस्कृति की तरह उन्हें नित्यबुद्ध व नित्यमुक्त रूप ईश्वर नही कहा है और न उन्हे ईश्वर का अवतार या अंश ही कहा है। उनका जीवन प्रारम्भ मे कालीमाई की तरह काला था, उन्होने साधना के साबुन से जीवन को मांजकर किस प्रकार निखारा, इसका विशद विश्लेषण आगम व आगमेतर साहित्य मे किया गया है।

---

५ जाव किं सव्वपाणा उववण्णपुव्वा ?

हंता गोयमा! असतिं अदुवा अणंतखुत्तो।

—भगवती सूत्र श० २, उ० ३

६ जीवे सव्वजीवाणं माइत्ताए, पिइत्ताए, भाइत्ताए, भगिणित्ताए, भज्जत्ताए, पुत्तत्ताए, धूयत्ताए, सुण्हत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हंता गोयमा! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

—भगवती शतक १२, उद्दे० ७

७ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी—चिरसंसिट्ठोऽसि मे गोयमा! चिरसंथुओऽसि मे गोयमा! चिरपरिचिओऽसि मे गोयमा! चिरजुसिओऽसि मे गोयमा! चिराणुगओऽसि मे गोयमा! चिराणुवत्तीऽसि मे गोयमा! अणंतरं देवलोए, अणंतरं माणुस्सए भवे किं परं ।

—भगवती शतक १४, उ० ७

सुनहरे चित्र

श्रमण सस्कृति दो प्रधान धाराओ मे प्रवाहित है। एक जैन सस्कृति और दूसरी बौद्धसस्कृति। दोना ही धाराओ मे अपने-अपने आराध्यदेवो के पूर्वभवो का कथन है। जातककथा मे बुद्धघोष ने महात्मा बुद्ध के पाँच सौ-सैंतालीस भवो का निरूपण किया है।[८] उन्होने बोधिसत्त्व के रूप मे तपस्वी, राजा, वृक्ष, देवता, गज, सिंह, तुरङ्ग, शृगाल, कुत्ता, बन्दर, मछली, सूअर, भैसा, चाण्डाल, आदि अनेक जन्म ग्रहण किये। बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए उन्होने कैसा और किस प्रकार जीवन जीया, यह उनके जीवनप्रसगो के द्वारा बताया गया है। बुद्धत्व की उपलब्धिहेतु एक भव का प्रयत्न नही, अपितु अनेक भवो का प्रयत्न अपेक्षित है। जैन सस्कृति के समर्थ आचार्यों ने भी तीर्थङ्करो के पूर्वभवो के सुनहरे चित्र प्रस्तुत किये हैं। उन्ही ग्रन्थो के आधार से अगली पक्तियो मे भगवान् श्री ऋषभदेव के पूर्वभवो का चित्रण किया जा रहा है।

किसी भी महान् पुरुष के वर्तमान का सही मूल्याकन करने के के लिए उसकी पृष्ठभूमि को देखना अत्यन्त आवश्यक है। उससे हमे पता चलता है कि आज के महान् पुरुष की महत्ता कोई आकस्मिक घटना नही, वरन् जन्म जन्मान्तरो मे की गई उसकी साधना का ही परिणाम है। पूर्वभवो का वर्णन उसके क्रम-विकास का सूचक है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर जैन इतिहास के लेखको ने भगवान् श्री ऋषभदेव के पूर्व भवो का विवेचन किया है, जिनसे प्रतीत होता है कि किस प्रकार क्रमश उनकी आत्मा बलवत्तर होती गई और अन्त मे उसका श्री ऋषभदेव के रूप मे विकास सामने आया।

आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, आवश्यकमलयगिरिवृत्ति, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, और कल्पसूत्र की टीकाओ मे श्री ऋषभदेव के तेरह भवो का उल्लेख है[९] और दिगम्बराचार्य जिनसेन ने

---

८. बौद्ध धर्म क्या कहता है ? —लेखक कृष्णदत्त भट्ट पृ० २७

९. धण-मिहुण-सुर-महब्बल-ललियग य वइरजघ मिहुणे य,
सोहम्म-विज्ज-अच्चुय चक्की सव्वट्ठ उसभे य।
—आवश्यक मलय० वृत्ति पृ० १५७।२

महापुराण में व आचार्य दामनन्दी ने 'पुराणसारसंग्रह'[10] में दस भवों का निरूपण किया है। अन्य दिगम्बर विज्ञों ने भी उन्हीं का अनुकरण किया है। श्वेताम्बराचार्यों ने श्री धन्ना सार्थवाह के भव से भवों की परिगणना की है और दिगम्बराचार्यों ने महाबल के भव से उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त अनेक जीवनप्रसंगों में भी अन्तर है।

यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इन भवों की जो परिगणना की गई है वह सम्यक्त्व उपलब्धि के पश्चात् की है।[11] श्री ऋषभदेव के जीव को अनादि काल के मिथ्यात्व रूपी निबिड अन्धकार में से सर्वप्रथम धन्ना (धन) सार्थवाह के भव में मुक्ति मिली थी और सम्यग्दर्शन के अमित आलोक के दर्शन हुए थे।

[१] धन्ना सार्थवाह

भगवान् श्री ऋषभदेव का जीव एक बार अपर महाविदेह क्षेत्र के क्षितिप्रतिष्ठ नगर में धन्ना सार्थवाह बनता है।[12] उसके पास विपुल

---

१० आद्यो महाबलो ज्ञेयो ललिताङ्गस्ततोऽपरः।
वज्रजङ्घस्तथाऽऽर्यश्च श्रीधरः सुविधिस्तथा॥
अच्युतो वज्रनाभोऽहमिन्द्रश्च वृषभस्तथा।
दर्शितानि पुराणानि पुरुदेवाऽऽश्रितानि वै॥
—पुराणसार संग्रह सर्ग० ५, श्लो० ५-६ पृ० ७८

११ सम्प्रति यथा भगवता सम्यक्त्वमवाप्तं यावतो वा भवानवाप्तसम्यक्त्वः संसारं पर्यटितवान्।
—आवश्यक मल० वृत्ति १५७।२

१२. तेणं कालेणं तेणं समएणं अवरविदेहवासे धणो नाम सत्थवाहो होत्था।
—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ११५

(ख) आवश्यक मल० वृत्ति, पृ० १५८।१
(ग) आवश्यक चूर्णि. पृ० १३१
(घ) तत्र साऽभूत् सार्थवाहो, धना नाम यशोधनः।
आस्पदं सम्पदामेकं, सरितामिव सागरः॥
—त्रिषष्टि० १।१।३६। पृ० ३

वैभव था, सुदूर विदेशो मे वह व्यापार भी करता था। एक वार उसने यह उद्घोषणा करवाई कि जिसे वसन्तपुर व्यापारार्थ चलना है वह मेरे साथ सहर्ष चले। मैं सभी प्रकार की उसे सुविधाएँ दूँगा।[13] शताधिक व्यक्ति व्यापारार्थ उसके साथ प्रस्थित हुए।[14]

धर्मघोष नामक एक जैन आचार्य भी अपने शिष्यसमुदाय सहित वसन्तपुर धर्म प्रचारार्थ जाना चाहते थे। पर, पथ विकट सकटमय होने से बिना साथ के जाना सम्भव नही था। आचार्य ने जव उद्घोषणा सुनी तो श्रेष्ठी के पास गये और श्रेष्ठी के साथ चलने की भावना अभिव्यक्त की।[15] श्रेष्ठी ने अपने भाग्य की सराहना करते हुए

---

१३ (क) सो खितिपइट्ठियातो नगरातो वाणिज्जेण वसन्तपुर पट्ठितो घोसण करेइ, जहा—जो मए सद्धि जाइ तस्साहमुदन्त वहामि, त जहा—"खाणेण वा पाणेण वा, वत्थेण वा, पत्तेण वा, ओसहेण वा, भेसज्जेण वा अण्णेण वा जो जेण विणा विसूरइ तेण" ति।

—आवश्यक मल० वृ० पत्र १५८।१

(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति पत्र ११५

(ग) सार्थवाहो धनस्तस्मिन् सकलेऽपि पुरे ,तत ।
डिण्डिम ताडयित्वोच्चै पुरुपानित्यघोपयत् ॥
असौ धन सार्थवाहो, वसन्तपुरमेष्यति ।
ये केऽप्यत्र यियासन्ति, ते चलन्तु सहाऽमुना ॥
भाण्ड दास्यत्यभाण्डायाऽवाहनाय च वाहनम् ।
सहाय चाऽसहायायाऽसम्वलाय च सम्वलम् ॥
दस्युभ्यस्त्रास्यते मार्गे, श्वपदोपद्रवादपि ।
पालयिष्यत्यसौ मन्दान् सहगान् वान्धवानिव ॥

—त्रिषष्टि० १।१।४५-४८ पृ० ३।१

१४ त च सोऊण वहवे तडियकप्पडियातो पयट्ठा।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५८

१५ आवश्यक चूर्णि० पृ० १३१

(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति प० ११५

अनुचरो को श्रमणो के लिए भोजनादि की सुविधा का पूर्ण ध्यान रखने का आदेश दिया।[१६] आचार्य श्री ने श्रमणाचार का विश्लेषण करते हुए बताया कि श्रमण के लिए औद्देशिक, नैमित्तिक, आदि सभी प्रकार का दूषित आहार निषिद्ध है। उसी समय एक अनुचर आम का टोकरा लेकर आया, श्रेष्ठी ने आम ग्रहण करने के लिए विनीत विनती की। पर, आचार्य श्री ने बताया कि श्रमण के लिए सचित्त पदार्थ भी अग्राह्य है। श्रमण के कठोर नियमो को सुनकर श्रेष्ठी अवाक् था।[१७]

आचार्य श्री भी सार्थ के साथ पथ को पार करते हुए बढे जा रहे थे। वर्षा ऋतु आई। आकाश मे उमड-घुमड कर घनघोर घटाएँ छाने लगी एव गम्भीर गर्जना करती हुई हजार-हजार धाराओ के रूप मे बरसने लगी। उस समय सार्थ भयानक अटवी मे से गुजर रहा था। मार्ग कीचड से व्याप्त था। सार्थ उसी अटवी मे वर्षावास व्यतीत करने हेतु रुक गया।[१८] आचार्य श्री भी निर्दोष स्थान मे स्थित हो गये।[१९]

(ग) नवर इह तेण मम गच्छो साहूण सम्पट्ठितो।

—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५८।१

(घ) अत्रान्तरे धर्मघोष आचार्य साधुचर्यया।
धर्मेण पावयन् पृथ्वी सार्थवाहमुपाययौ॥

—त्रिषष्ठि १।१।५१।३।१

१६ धनेन पृष्टास्त्वाचार्या समागमनकारणम्।
वसन्तपुरमेष्यामस् त्वत्सार्थेनेत्यचीकथन्॥
सार्थवाहोऽप्युवाचैव धन्योऽद्य भगवन्नहम्।
अभिगम्या यदायाता मत्सार्थेन च यास्यय॥

—त्रिषष्ठि १।१।५३-५४।३।१

१७. त्रिषष्ठि १।१।५५ से ६१ पृ० ३।२

१८ (क) धणसत्थवाह घोसण,
जइगमण अडवि वासठाण च।

—आवश्यक नियुक्ति, गा० १६८

(ख) आवश्यक चूर्णि, जिन० पृ० १३१

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११५

उस अटवी मे सार्थ को अपनी कल्पना से अधिक रुकना पडा, अत साथ की खाद्य सामग्री समाप्त हो गई। क्षुधा से पीडित सार्थ अरण्य मे कन्द मूलादि की अन्वेषणा कर जीवन व्यतीत करने लगा।[२०]

वर्षावास के उपसहार काल मे धन्ना सार्थवाह को अकस्मात् स्मृति आई कि "मेरे साथ जो आचार्य आये थे उनकी आज तक मैंने सुध नही ली। उनके आहार की क्या व्यवस्था है, इसकी मैंने जाँच नही की। कन्दमूलादि सचित्त पदार्थों का वे उपभोग नही करते।" वह शीघ्र ही आचार्य के पास गया और आहार के लिए अभ्यर्थना की।[२१]

(घ) सो य सत्थो जाहे अडविमज्झ सम्पत्तो, ताहे वासारत्तो जातो, ताहे सो सत्थवाहो अतिदुग्गया पन्थ त्ति काऊण तत्थेव सत्थनिवेस काउ वासावास ठितो, तम्मि ठिए सव्वो सत्थो ठिओ।

—आवश्यक नियुक्ति मल० वृ० प० १५८।१

(ङ) त्रिषष्ठि १।१।१००।

१९ त्रिषष्ठि १।१।१०२।

२० (क) जाहे य तेसिं अन्नसत्थेल्लयाण निट्ठिय भोयण, ताहे कन्दमूलाइ समुद्दिसन्ति।

—आवश्यक चूर्णि पृ० ११५

(ख) जाहे य तेसिं तत्थट्ठियाण भोयण निट्ठिय, ताहे ते कन्दमूलफलाणि समुद्दिसिउमारद्धा।

—आवश्यक नियुक्ति मल० वृ० १५८।१

(ग) भूयस्त्वात् सार्थलोकस्य दीर्घत्वात् प्रावृषोऽपि च।
अत्रुट्यत् तत्र सर्वेपा पाथेययवसादिकम्॥
ततश्चेतस्ततश्चेलु कुचेलास्तापसा इव।
खादितु कन्दमूलादि क्षुधार्ता सार्थवासिन॥

—त्रिषष्ठि १।१।१०३-१०४

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति ११५

२१ आवश्यकनियुक्ति गा० १६८।

(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० १३२।

आचार्य श्री ने श्रेष्ठी को कल्प्य और अकल्प्य का परिज्ञान कराया। श्रेष्ठी ने भी कल्प्य अकल्प्य का परिज्ञान कर उत्कृष्ट भावना से प्रासुक विपुल घृत दान दिया।[22] फलस्वरूप सम्यक्त्व की उपलब्धि हुई।[23]

(ग) एव काले वच्चति थोवावसेसे वासारत्ते धणस्स चिन्ता जाता—को एत्थ सत्थे दुक्खितोत्ति ? ताहे सरिय जहा मए मम माहुणो आगया तेसिं कदाई न कप्पतित्ति, ते दुक्खिया महातवस्सिणो, तो तेसिं कल्ल देमि, ततो पभाए ते निमतिया।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५८।१

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११५।

२२ वहु वोलीणे वासे चिन्ता घयदाणभासि तया।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १६८

(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० १३२।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति ११५।

(घ) ते भणन्ति—ज अम्ह कप्पिय होज्जा त गेण्हेज्जामो। तेण पुच्छिय भयव ! किं पुण तुब्भ कप्पइ ? साहूहिं भणिय—ज अम्ह निमित्तमकयमकारियमसकप्पियमहापवत्तातो पाकातो भिक्खामित्त······ ततो तेण साहूण फासुय विउल घयदाण दिन्न।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५८।१

(ङ) धन्योऽह कृतकृत्योऽह, पुण्योऽहमिति चिन्तयन्।
रोमाञ्चितवपु सर्पि साधवे स स्वय ददौ॥
आनन्दाश्रुजलै पुण्यकन्द कन्दलयन्निव।
घृतदानावसानेऽथ धनोऽवन्दत तौ मुनी॥
सर्वकल्याणससिद्धौ सिद्धमन्त्रसम तत।
वितीर्य धर्मलाभ तौ जग्मतुर्निजमाश्रयम्॥

—त्रिषष्ठि० १।१।१४०–१४२ प० ६

२३. तदानी सार्थवाहेन दानस्याऽस्य प्रभावत।
लेभे मोक्षतरोर्बीज वोधिवीज सुदुर्लभम्॥

—त्रिषष्ठि १।१।१४३।प० ६

[२] उत्तरकुरु में मनुष्य

वहाँ से धन्ना सार्थवाह का जीव आयु पूर्ण कर दान के दिव्य प्रभाव से उत्तरकुरुक्षेत्र मे मनुष्य हुआ ।[२८]

[३] सौधर्म देवलोक

वहाँ से भी आयुपूर्ण होने पर धन्ना सार्थवाह का जीव सौधर्म कल्प मे देव रूप मे उत्पन्न हुआ ।[२९]

---

२८ सो अहाउय पालइत्ता तेण दाणफलेण उत्तरकुरुमणुतो जातो ।
—आवश्यक चूर्णि पृ० १३२

(ख) तेण दाणफलेण उत्तरकुराए मणूसो जाओ ।
—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति, पृ० ११६

(ग) सो य अहाउय पालित्ता कालमासे काल किच्चा तेण दाणफलेण उत्तरकुराए मणूसो जातो ।
—आवश्यक मल० वृत्ति० प० १५८।१

(घ) कालेन तत्र पूर्णायु कालधर्ममुपागत ।
आस्थितैकान्तसुषमेपूत्तरेपु कुरुष्वसौ ।।
सीतानद्युत्तरतटे जम्बूवृक्षानुपूर्वत ।
उत्पेदे युग्मधर्मेण, मुनिदानप्रभावत ।।
—त्रिषष्ठि १।१।२२६–२२७ प० ६

२९ (क) ततो आउक्खएण उव्वट्टिऊण सोहम्मेकप्पे तिपलिओवमठितीओ देवो जाओ ।
—आवश्यक चूर्णि पृ० १३२

(ख) ततो आउक्खए सोहम्मे कप्पे देवो उववन्नो ।
—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११६।१

(ग) आवश्यक मल० वृ० प० १५८।१

(घ) मिथुनायु पालयित्वा, धनजीवस्ततश्च स. ।
प्राग्जन्मदानफलत. सौधर्मे त्रिदशोभवत् ।।
—त्रिषष्ठि १।१।२३८

[४] महाबल[२६]

वहाँ से च्यवकर धन्ना सार्थवाह का जीव पश्चिम महाविदेह के गंधिलावती विजय मे वैताढ्य पर्वत की विद्याधर श्रेणी के अधिपति शतबल राजा का पुत्र महाबल हुआ।[२७]

आचार्य जिनसेन[२८] व आचार्य दामनन्दी[२९] ने उसे अतिबल का

---

२६ आवश्यक चूर्णि मे आचार्य जिनदास गणि महत्तर ने महाबल, ललिताङ्ग, वज्रजङ्घ, युगल, सुधर्मदेवलोक इन—पांच भवो का वर्णन नही किया है। —लेखक

२७ तत्तोऽवि चविऊण इहेव जम्बुद्दीवे अवरविदेहे गन्धिलावइविजए वेयड्ढपव्वए गन्धारजणवए गन्धसमिद्धे विज्जाहर नगरे ..... सयबलराइणो पुत्तो महाबलो नाम राया जातो।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५८।२

(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृ० प० ११६

(ग) च्युत्वा सौधर्मकल्पाच्च, विदेहेष्वपरेष्वथ।
विजये गन्धिलावत्या वैताढ्यपृथिवीधरे॥
गान्धाराख्ये जनपदे, पुरे गन्धसमृद्धके।
राज्ञः शतबलाख्यस्य विद्याधरशिरोमणेः॥
भार्याया चन्द्रकान्ताया पुत्रत्वेनोदपादि स।
नाम्ना महाबल इति, बलेनाऽतिमहाबल॥

—त्रिषष्ठि १।१।२३९–२४१ प० १०।१

(घ) उत्तरकुरु मोहम्मे महाविदेहे महब्बलो राया।

—आव० नि० म० वृ० १५६।१

२८ तस्या पतिरभूत्खेन्द्रमुकुटारूढशासन।
खगेन्द्रोऽतिबलो नाम्ना प्रतिपक्षबलक्षय॥१२२॥
मनोहराङ्गी तस्याभूत् प्रिया नाम्ना मनोहरा॥१३१॥
तयोर्महाबलस्यातिरभूत्सूनुर्महोदय ॥१३३॥

—महापुराण पर्व ४। श्लो० १२२, १३१, १३३ पृ० ८२–८३

२९ अलकाया मनोहर्यास्तनयोऽतिबलस्य च।
महाबल इतिख्यात खेन्द्रोऽभूद् दशमे भवे॥

—पुराणसार संग्रह ५।१।१

पुत्र लिखा है। और आचार्य मलयगिरि[30] व आचार्य हेमचन्द्र[31] ने अतिबल का पौत्र लिखा है।

महाबल के पिता को एक बार संसार से विरक्ति हुई,[32] पुत्र को राज्य दे वह स्वयं श्रमण बन गये।[33]

एक बार सम्राट् महाबल अपने प्रमुख अमात्यों[34] के साथ राज्य-

---

३० अइबलरण्णो णत्ता।

—आवश्यकनिर्युक्ति मल० वृ० १५८

३१ त्रिषष्ठिशला० १।१२५

३२ अथान्येद्युरसौ राजा निर्वेदं विषयेष्वगात्।
वितृष्णः कामभोगेषु प्रव्रज्यायै कृतोद्यमः॥

—महापुराण, जिन० ४।१४१।८४

(ख) त्रिषष्ठि १।१।२५० से २६५।

३३ पुत्रं राज्ये निवेश्यैव स्वयं शतबलस्ततः।
आददे शमसाम्राज्यमाचार्यचरणान्तिके॥

—त्रिषष्ठि १।१।२७४

(ख) इति निश्चित्य धीरोऽसावभिषेकपुरस्सरम्।
सूनवे राज्यसर्वस्वमदितातिबलस्तदा॥
ततो गज इवापेतबन्धनो निःसृतो गृहात्।
बहुभिः खेचरैः सार्द्धं दीक्षां स समुपाददे॥

—महापुराण जिन० ४।१५१।१५२ पृ० ८५

३४ ते स्वयम्बुद्धः सम्भिन्नमतिः शतमतिस्तथा।
स्वयबुद्धश्च तत्रासाञ्चक्रिरे मन्त्रिणोऽपि हि॥

—त्रिषष्ठि० १।१।२८७।११

(ख) महामतिश्च सम्भिन्नमतिः शतमतिस्तथा।
स्वयंबुद्धश्च राज्यस्य मूलस्तम्भा इव स्थिरा॥

—महापुराण ४।१९१।८५

सभा मे बैठे हुए मनोविनोद कर रहे थे।[३५] उनके प्रमुख चार अमात्यो मे से स्वयबुद्ध अमात्य सम्यग्दृष्टि था, सभिन्नमति, शतमति, और महामति ये मिथ्यादृष्टि थे।

स्वयबुद्ध ने देखा—सम्राट् भौतिक वैभव की चकाचौध मे जीवन के लक्ष्य को विस्मृत कर चुके है। उसने सम्राट् को सम्बोध देने हेतु धर्म के रहस्य पर प्रकाश डालते हुए कहा—दया धर्म का मूल है। प्राणो की अनुकम्पा ही दया है। दया की रक्षा के लिए ही शेष गुणो का उत्कीर्तन किया गया है। दान, शील, तप, भावना, योग, वैराग्य उस धर्म के लिंग है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ही सनातन धर्म है।[३६]

अन्य अमात्यो ने परिहास करते हुए कहा—मन्त्रिवर ! जब आत्मा ही नही है तब धर्म-कर्म का प्रश्न ही नही रहता। जिस प्रकार महुआ, गुड, जल, आदि पदार्थों को मिला देने से उनमे मादक शक्ति पैदा हो जाती है, उसी प्रकार पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि के सयोग से चेतना

---

३५ कदाचिदथ तस्याऽऽसीद्वर्षवृद्धिदिनोत्सव ।
मङ्गलैर्गीतवादित्रनृत्यारम्भैश्च सभृत ॥
सिंहासने तमासीन तदानी खचराधिपम् ।
—महापुराण० जिन० प० ५, श्लो० १–२ पृ० ९१

स्वयम्बुद्धोऽभवत्तेषु सम्यग्दर्शनशुद्धधी ।
शेपा मिथ्यादृशस्तेऽमी सर्वे स्वामिहितोद्यता ॥
—महापुराण ४।१९२। पृ० ८९

(ख) पुराणसार श्लो० ७, सर्ग १। पृ० १

३६ दयामूलो भवेद्धर्मो दयाप्राण्यनुकम्पनम् ।
दयाया परिरक्षार्थं गुणा शेपा प्रकीर्तिता ॥
धर्मस्य तस्य लिङ्गानि दम क्षान्तिरहिंस्रता ।
तपो दान च शील च योगो वैराग्यमेव च ॥
अहिंसा सत्यवादित्वमचौर्य त्यक्तकामता ।
निष्परिग्रहता चेति प्रोक्तो धर्म सनातन ॥
—महापुराण, पर्व ५, श्लो० २१, २२, २३ पृ० ९२

उत्पन्न हो जाती है।[37] एतदर्थ ही लोक मे पृथ्वी आदि तत्त्वो से बने हुए हमारे शरीर से पृथक् रहने वाला चेतना नामक कोई पदार्थ नही है। क्योकि शरीर से पृथक् उसकी उपलब्धि नही होती। ससार में जो पदार्थ प्रत्यक्ष रूप से पृथक् सिद्ध नही होते उनका अस्तित्व भी आकाशकुसुमवत् माना जाता है।[38] वर्तमान के सुखो को त्याग कर भविष्य के सुखो की कल्पना करना "आधी छोड एक को धावै, ऐसा डूवा थाह न पावै" की लौकिक कहावत चरितार्थ करना है।

नास्तिक मत का निरसन करते हुए स्वयवुद्ध अमात्य ने कहा—पदार्थो को जानने का साधन केवल इन्द्रिय और मन का प्रत्यक्ष ही नही, अपितु अनुभव प्रत्यक्ष, योगि-प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम भी है। इन्द्रिय और मन की शक्ति अत्यन्त सीमित है। इनसे तो चार पाँच पीढी के पूर्वज भी नही जाने जा सकते तो क्या उनका अस्तित्व भी न माना जाय? इन्द्रियाँ केवल शब्द, रूप, गध, रस और स्पर्शात्मक मूर्त द्रव्य को जानती है और मन उन्ही पदार्थों का चिन्तन करता है। यदि मन अमूर्त पदार्थो को जानता भी है तो आगम दृष्टि से ही। स्पष्ट है कि विश्व के सभी पदार्थ सिर्फ इन्द्रिय और मन से नही जाने जा सकते। आत्मा शब्द, रूप, रस, गध और स्पर्श नही है।[39] वह अरूपी सत्ता है।[40] अरूपी तत्त्व इन्द्रियो से नही जाने जा सकते।

---

३७ पृथ्व्यप्तेज समीरेभ्य समुद्भवति चेतना।
गुडपिष्टोदकादिभ्यो, मदशक्तिरिव स्वयम्॥
—त्रिषष्ठि० १।१।३३१

(ख) पृथिव्यप्पवनाग्नीना सङ्घातादिह चेतना।
प्रादुर्भवति मद्याङ्गसङ्गमान्मदशक्तिवत्॥
—महापुराण पर्व ५, श्लो० ३० पृ० ९३

३८ ततो न चेतना कायतत्त्वात्पृथगिहास्ति न।
तस्यास्तद्व्यतिरेकेणानुपलब्धे खपुष्पवत्॥
—महापुराण पर्व ५, श्लो० ३१, पृ० ९३

३९ से ण सद्दे, ण रूवे, ण गन्धे, ण रसे, ण फासे।
—आचाराग १।५।६।३३३

४० अरूवी सत्ता''' ' '' —आचाराग १।५।६।३३२

आत्म-सिद्धि के प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करते हुए उसने कहा—स्वसवेदन से भी आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। मैं सुखी हूँ, मै दु खी हूँ—यह अनुभूति शरीर को नही होती, अतएव इस अनुभूति का कर्त्ता शरीर से भिन्न ही होना चाहिए।[४१] सभी को यह विश्वास होता है कि मै हूँ, पर किसी को भी यह अनुभव नही होता कि मैं नही हूँ।[४२]

प्रत्येक इन्द्रिय को अपने विषय का ही परिज्ञान होता है, अन्य इन्द्रिय के विषय का नही। यदि आत्म-तत्त्व को न माना जाय तो सभी इन्द्रियो के विषयो का जोड रूप [सकलनात्मक] ज्ञान नही हो सकता, किन्तु पापड खाते समय स्पर्श, रस, गध, रूप और शब्द—इन पाँचो का सकलित ज्ञान स्पष्ट होता है। एतदर्थ इन्द्रियो के विषयो का सकलनात्मक परिज्ञान करने वाले को इन्द्रियो से पृथक् मानना होगा और वही आत्मा है।

आत्मा और शरीर एक नही है। जो चैतन्य है, वह शरीर रूप नही है और जो शरीर है, वह चैतन्य रूप नही है, क्योकि दोनो एक दूसरे से स्वभावत विसदृश हैं। चैतन्य चित्स्वरूप है—ज्ञान दर्शन रूप है और शरीर अचित्स्वरूप है—जड है।[४३] आत्मा और शरीर का सम्बन्ध

---

४१ स्वसवेदनवेद्योऽयमात्माऽस्ति सुखदु खवित्।
निषेधितु बाधाभावाच्छक्यते न हि केनचित्॥
सुखितोऽह दु खितोऽहमिति कस्याऽपि जातुचित्।
जायते प्रत्ययो नैव विनाऽऽत्मानमबाधित॥

—त्रिषष्ठि० १।१।३४७–३४८। पृ० १३

४२. सर्वोह्यात्माऽस्तित्व प्रत्येति, न नाहमस्मीति।

—ब्रह्मभाष्य १।१।१। आचार्य शकर

४३ कायात्मक न चैतन्य, न कायश्चेतनात्मक।
मिथो विरुद्धधर्मत्वात्तयोश्चिदचिदात्मनो॥

—महापुराण पर्व ५, श्लो० ५१ पृ० ९६

वस्तुत. तलवार और म्यान की तरह है। आत्मा तलवार है और शरीर म्यान है।[४४]

भूतचतुष्टय से आत्मा की उत्पत्ति होना सभव नही है। क्योकि जो जड है उससे चेतन की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? वस्तुत कार्यकारणभाव और गुणगुणिभाव सजातीय पदार्थों मे ही होता है, विजातीयों मे नही।[४५] पुष्प, गुड और जल के संयोग मे मादक शक्ति उत्पन्न होने का उदाहरण देना भी अनुपयुक्त है, क्योकि गुड आदि भी जड हैं और उनसे समुत्पन्न मादक शक्ति भी जड है। यह तो सजातीय द्रव्य से ही सजातीय द्रव्य की उत्पत्ति हुई, न कि विजातीय द्रव्य की।[४६] यदि आप शरीर के साथ ही आत्मा की उत्पत्ति मानते हैं तो जन्मते ही शिशु मे दुग्धपान की इच्छा और प्रवृत्ति कैसे होती है?[४७] अत. यह स्पष्ट है कि आत्मा है, वह नित्य है, फलत. पूर्वभव के संस्कारो से ही ऐसा होता है।

---

४४. कायचैतन्ययोर्नैक्य विरोधिगुणयोगत ।
तयोरन्तर्वहीरूपनिर्भासाच्चासिकोशवत् ॥
—महापुराण ५।५२।६६

४५ न भूतकार्यं चैतन्य घटते तद्गुणोऽपि वा ।
ततो जात्यन्तरीभावात्तद्विभागेन तद्ग्रहात् ॥
—महापुराण ५।५३।६६

४६. एतेनैव प्रतिक्षिप्त मदिराङ्गनिदर्शनम् ।
मदिराङ्गेष्वविरोधिन्या मदशक्तेर्विभावनात् ॥
—महापुराण ५।६५।६८

(ख) किञ्च पिष्टोदकादिभ्यो, मदशक्तिरचेतना ।
अचेतनेभ्यो जातेति दृष्टान्तश्चेतने कथम् ? ॥
—त्रिषष्ठि १।१।३६१ पृ० १४।१

४७ विना हि पूर्वचैतन्यानुवृत्ति जातमात्रक ।
अशिक्षित. कथ वालो, मुखमर्पयति स्तने ? ॥
—त्रिषष्टि १।१।३५३

(ख) आद्यन्तौ देहिना देहौ न विना भवतस्तनू ।
पूर्वोत्तरे संविदधिष्ठानत्वान्मध्यदेहवत ॥
—महापुराण ५।६८।६८

इस प्रकार स्वयबुद्ध के अकाट्य तर्कों से नास्तिकवादी अमात्य परास्त हो गये। सभी ने आत्मा के पृथक् अस्तित्व को स्वीकार किया और महाबल राजा भी अत्यन्त आह्लादित हुआ।[४८]

स्वयबुद्ध अमात्य ने अन्य अनेक उपनयो के[४९] द्वारा सम्राट् को यह बताया कि शुभ और अशुभ कृत्यो का फल भी क्रमश शुभ और अशुभ ही होता है।[५०]

वार्ता का उपसहार करते हुए उसने कहा—राजन्! आज प्रातः मैं नन्दन वन मे परिभ्रमणार्थ गया था, वहाँ दो विशिष्ट लब्धिधारी मुनिवर पधारे। मैंने उनसे आपकी अवशेष आयु के सम्बन्ध मे जिज्ञासा प्रस्तुत की तो उन्होने बताया कि वह एक माह की ही शेष है।[५१]

---

४८ इति तद्वचनाज्जाता परिषत्सकलैव सा।
निरारेकात्मसद्भावे सम्प्रीतश्च सभापतिः॥
—महापुराण ५।८६।१०१

(ख) त्रिषष्ठि १।१

४९ त्रिषष्ठि १।१।४००।४४२

(ख) महापुराण पर्व ५। श्लोक ८९ से २१२, पृ० १०१–११२

५० सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला हवन्ति।
दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला हवन्ति॥
—औपपातिक सूत्र

५१. ताभ्या तु भवतो माममात्रमायुर्निवेदितम्।
अतस्त्वा त्वरयाम्यद्य, धर्मायैव महामते!
—त्रिषष्ठि १।१।४४६

(ख) मासमात्रावशिष्टञ्च जीवित तस्य निश्चिनु।
तदस्य श्रेयसे भद्र! घटेथास्त्वमशीतक॥
—महापुराण ५।२२१।११३

(ग) मासावसेसाऊ'' ''
—आव० नि० मल० वृ० पृ० १५८

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११६

सम्राट् महावल अमात्य के मुँह से मुनि की भविष्यवाणी सुनकर सकपका गया। मृत्यु के भयानक आतङ्क से वह विह्वल हो गया। अमात्य ने निवेदन किया—राजन्! घबराइये नही, घवराने वाला योद्धा रणक्षेत्र मे जूझ नही सकता।

अमात्य की प्रेरणा से पुत्र को राज्यभार सँभलाकर महावल मुनि वने।[५२] दुष्कृत्यो की आलोचना की, और बावीस दिन का सथारा कर समाधि पूर्वक आयुष्य पूर्ण किया।[५३]

---

५२. आमेत्युदित्वा स्वसुत स्वे पदे प्रत्यतिष्ठिपत्।
महावलस्तदाचार्यं प्रासादे प्रतिमामिव॥

—त्रिषष्ठि १।१।४५२

(ख) सुतायातिवलाख्याय दत्वा राज्य समृद्धिमत्।
सर्वानापृच्छ्य मन्त्र्यादीन् पर स्वातन्त्र्यमाश्रित॥

— महापुराण ५।२२८।११३

५३ (क) वावीसदिवसे भत्तपच्चक्खाण काउ मरिऊण।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५८।२

(ख) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११६।

(ग) समाहित स्मरन् पञ्चपरमेष्ठिनमस्क्रियाम्।
द्वाविंशति दिनान् कृत्वाऽनशनं स व्यपद्यत॥

—त्रिषष्ठि १।१।४४६। पृ० १७

(घ) यावज्जीव कृताहारशरीरत्यागसगर।
गुरुसाक्षि समारुक्षद् वीरशय्याममूढधी॥

—महापुराण ५।२३०।११३

देहाहारपरित्यागव्रतमास्थाय वीरधी।
परमाराधनाशुद्धि स भेजे सुसमाहित॥

—महा० ५।२३३।११४

द्वाविंशतिदिनान्येप कृतसल्लेखना विधि।
जीवितान्ते समाधाय मन स्व परमेष्ठिपु॥

—महा० पर्व ५। श्लोक २४८। पृ० ११५

इस प्रकार धन सार्थवाह का जीव, जो अब तक आध्यात्मिक विकास की प्रथम भूमिका—सम्यग् दर्शन—तक ही पहुँच पाया था, इस भव मे अधिक अग्रसर हुआ। इस वार उसने चतुर्थ गुण-स्थान से ऊपर उठ कर छठे-सातवे गुणस्थान की भूमिका पर पाँव रक्खा।

[५] ललिताङ्ग देव

महाबल का जीव ऐशान कल्प मे ललिताङ्ग देव हुआ[५४] और वह वहाँ स्वयप्रभा देवी मे अत्यधिक आसक्त बना। जब स्वयप्रभा देवी वहाँ से च्यव जाती है तब ललिताङ्ग देव उसके विरह मे आकुल-व्याकुल बन जाता है।[५५] स्वय बुद्ध अमात्य, जो इसी कल्प में देव बना था, आकर सान्त्वना देता है।[५६] स्वयप्रभा देवी भी वहाँ से

---

५४ ईसाणे कप्पे सिरिप्पभविमाणे ललियगतो नाम देवो जातो।

—आवश्यक निर्युक्ति मल० वृ० प० १५८

(ख) ईसाणे कप्पे सिरिप्पभेविमाणे ललियओ नाम देवो जाओ।

—आवश्यक हरिभद्रीयावृत्ति प० ११६

(ग) त्रिषष्ठि० १।१।४६०।४६४

(घ) देहभारमथोत्सृज्य लघूभूत इव क्षणात्।
प्रापत् स कल्पमैशानम् अनल्पसुखसन्निधिम्॥
तत्रोपपादशय्यायाम् उदपादि महोदय।
विमाने श्रीप्रभे रम्ये, ललिताङ्ग सुरोत्तम॥

—महापुराण ५।२५३-२५४।११६

५५ दलं वृक्षादिव दिवस्ततोऽच्योष्ट स्वयम्प्रभा।
आयु कर्मणि हि क्षीणे, नेन्द्रोऽपि स्थातुमीश्वर॥
आक्रान्त पर्वतेनेव, कुलिशेनेव ताडित।
प्रियाच्यवनदु खेन, ललिताङ्गोऽथ मूर्च्छित॥

—त्रिषष्ठि १।१।५१५-५१६

५६. इतश्च स्वामिमरणोत्पन्नवैराग्यवासन।
स्वयम्बुद्धोऽप्यात्तदीक्ष. श्रीसिद्धाचार्यसन्निधौ॥

च्यव कर मानवलोक मे निर्नामिका नामक बालिका होती है और वहाँ केवली भगवान् के उपदेश से श्राविका बन कर, आयु पूर्ण कर पुन उसी कल्प मे ललिताङ्ग देव की प्रिया स्वयप्रभा देवी बनती है।[५७] ललिताङ्ग देव मोह की प्रबलता के कारण पुन उसमे आसक्त बनता है।[५८] अन्त मे ललिताङ्ग देव नमस्कार महामन्त्र का जाप करते हुए आयु पूर्ण करता है।[५९]

[६] वज्रजङ्घ

वहाँ से च्यवकर ललिताङ्ग देव का जीव जम्बूद्वीप की पुष्कलावती विजय मे लोहार्गल नगर के अधिपति सुवर्णजघ सम्राट् की पत्नी-लक्ष्मी की कुक्षि मे उत्पन्न हुआ।[६०] वज्रजघ नाम दिया गया।[६१]

सुचिर निरतीचार पालयित्वा व्रत सुधी ।
ऐशाने दृढधर्मास्थ्य, इन्द्रसामानिकोऽभवत् ॥
स पूर्वभवसम्बन्धाद् बन्धुवत् प्रेमबन्धुर ।
आश्वासयितुमित्यूचे, ललिताङ्गमुदारधी ॥

—त्रिषष्ठि १।१।५२०-५२२

५७. पल्योपमपृथक्त्वावशिष्टमायुर्यदास्थ च ।
तदोदपादि पुण्यै स्वै. प्रेयस्यस्य स्वयप्रभा ॥

—महापुराण श्लो० २८६ प० ५, पृ० ११८

५८ सैषा स्वयंप्रभाऽस्यासीन् परा सौहार्दभूमिका ।
चिर मधुकरस्येव प्रत्यग्रा चूतमञ्जरी ॥

—महापुराण श्लो० २८८ पर्व० ५ पृ० ११८

५९. नमस्कारपदान्युच्चै अनुध्यायन्नमाध्वस ।
साध्वसौ मुकुलीकृत्य करौ प्रायाद श्यताम् ॥

—महापुराण श्लो० २५, पर्व० ६, पृ० १२२

६०. (क) पुक्खलावइविजए लोहग्गलणगरसामी वइरजघो नाम राजा जाओ ।

— आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति० पृ० ११६

(ख) ततो आउक्खए चइऊण इहेव जम्बुद्दीवे दीवे पुक्खलाइविजए लोहग्गलनगरसामी वइरजघो नाम राया जातो ।

—आवश्यक मल० वृ० १५८

महापुराणकार ने माता का नाम वसुन्धरा और पिता का नाम वज्रबाहु[62] और नगर का नाम उत्पलखेटक दिया है।[63]

स्वयप्रभा देवी भी वहाँ से आयु पूर्ण कर आचार्य श्री हेमचन्द्र के अभिमतानुसार पुण्डरीकिणी नगरी के स्वामी वज्रसेन राजा की धर्मपत्नी "गुणवती" रानी की कुक्षि मे उत्पन्न हुई। जन्म के पश्चात् उसका नाम 'श्रीमती' रखा।[64] आचार्य श्री जिनसेन व आचार्य

(ग) जम्बूद्वीपे तत पूर्वविदेहेषूपसागरम्।
महानद्याश्च सीताभिधानाया उत्तरे तटे ॥
विजये पुष्कलावत्या लोहार्गलमहापुरे।
राज्ञ सुवर्णजङ्घस्य लक्ष्म्या पत्न्या सुतोऽभवत् ॥

—त्रिषष्ठि० १।१।६२४-६२५

६१ अथ कन्दलितानन्दावमुष्य दिवसे शुभे।
वज्रजङ्घ इति प्रीतौ पितरौ नाम चक्रतु. ॥

—त्रिषष्ठि० १।१।६२६

६२ वज्रबाहु. पतिस्तस्य वज्रीवाज्ञापरोऽभवत्।
कान्ता वसुन्धरास्यासीद् द्वितीयेव वसुन्धरा ॥
तयो सूनुरभूद्देवो ललिताङ्गस्ततश्च्युत।
वज्रजघ इति ख्याति दधदन्वर्थता गताम् ॥

—महापुराण श्लो० २८।२९ प० ६ पृ० १२२

६३. जम्बूद्वीपे महामेरो विदेहे पूर्वदिग्गते।
या पुष्कलावतीत्यासीत् जानभूमिर्मनोरमा ॥
स्वर्गभूनिर्विशेषा ता पुरमुत्पलखेटकम्।

—महापुराण श्लो० २६।२७ पर्व० ६। पृ० १२२

६४ स्वयम्प्रभाऽपि दु खार्ता, कालेन कियताऽप्यथ।
धर्मकर्मणि सलीना, व्यच्योष्ट ललिताङ्गवत् ॥
नगर्यां पुण्डरीकिण्यां विजयेऽत्रैव चक्रिण.।
वज्रसेनस्य भार्याया, गुणवत्या सुताऽभवत् ॥
सर्वलोकातिशायिन्या, श्रियाऽसौ सयुता तत।
श्रीमतीत्यभिधानेन पितृभ्यामभ्यधीयत ॥

—त्रिषष्ठि० १।१।६२७-६२९

श्री दामनन्दी के मतानुसार उनके पिता का नाम "वज्रदन्त" और माता का नाम "लक्ष्मीमती" था।[६५]

एक बार "श्रीमती" महल की छत पर घूम रही थी कि उसी समय सन्निकटवर्ती उद्यान मे एक मुनि को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। केवल महोत्सव करने हेतु देवगण आकाशमार्ग से आ-जा रहे थे।[६६] आकाश मार्ग से जाते हुए देवसमूह को निहार कर श्रीमती को पूर्वभव की स्मृति उद्बुद्ध हुई[६७], उसने उस स्मृति को एक पट्ट पर चित्रित

(ख) नामत श्रीमती ख्याता रूपविद्याकलागुणै

—पुराणसार २६।१।६

६५ ' ' तस्या पतिरभून्नाम्ना वज्रदन्तो महीपति ।

महापुराण श्लो० ५८। पर्व ६, पृ० १२४

लक्ष्मीरिवास्य कान्ताङ्गी लक्ष्मीमतिरभूत्प्रिया ॥

—वही श्लो० ५६। प० ६, पृ० १२४

तयो. पुत्री बभूवासौ विश्रुता श्रीमतीति या ।

—वही श्लो० ६० पर्व० ६, पृ० १२४

(ख) पुराण सार सग्रह २५।१।६

६६ (क) ततो मनोरमोद्याने सुस्थितस्य महामुने. ।
उत्पन्ने केवलज्ञाने ददर्शाऽऽगच्छत सुरान् ॥

—त्रिषष्ठि १।१।६३३

(ख) तदैतदभवत्तस्या सविधानकमीदृशम् ।
यशोधरगुरोस्तस्मिन् पुरे कैवल्यसभवे ॥
मनोहराख्यमुद्यानम्, अध्यासीनं तमर्चितुम् ।
देवा सम्प्रापुरारूढविमाना सह सम्पदा ॥

—महापुराण श्लो० ८५–८६, पर्व ६। पृ० १२७

६७ दृष्टपूर्व मया क्वेदमित्यूहापोहकारिणी ।
जन्मान्तराणि पूर्वाणि निशास्वप्नमिवाऽस्मरत् ॥

—त्रिषष्ठि १।१।६३४

(ख) देवागमे क्षणात्तस्या प्राग्जन्मस्मृतिराश्वभूत् ।

—महापुराण श्लो० ६१, पर्व ६। पृ० १२७

(ग) पुराणसार संग्रह २६–२७–१।६

किया[६८] और अपने प्रति स्नेहमूर्ति पण्डिता परिचारिका को प्रदान किया। पण्डिता परिचारिका प्रस्तुत चित्रपट को लेकर राजपथ पर, जहाँ चक्रवर्ती वज्रसेन की वर्षगाँठ मनाने हेतु अनेक देशो के राजकुमार आ-जा रहे थे, खडी होगई।[६९] वज्रजघ राजकुमार भी, जो पूर्वभव मे ललिताङ्ग देव था, वहाँ आया हुआ था। उसने ज्यो ही वह चित्र-पट्ट देखा त्योही उसे भी पूर्वभव की स्मृति जागृत हो गई। उसने चित्रपट्ट का सारा इतिवृत्त पण्डिता परिचारिका को बताया, और पण्डिता परिचारिका ने श्रीमती को निवेदन किया।[७०] श्रीमती की प्रेरणा से परिचारिका ने चक्रवर्तीसम्राट् वज्रसेन को श्रीमती और वज्रजघ के पूर्वभव का परिचय प्रदान किया।[७१] चक्रवर्ती वज्रसेन ने 'श्रीमती' का वज्रजघ के साथ पाणिग्रहण कर दिया।[७२]

---

६८ मया विलिखित पूर्वभवसम्बन्धिपट्टकम्।
—महापुराण श्लो० १७० पर्व ६, पृ० १३३

६९ चक्रिणो वज्रसेनस्य वर्षग्रन्थिरभूत् तदा।
प्रस्तावादाययुस्तत्र, भूयासो वसुधाधवा॥
पण्डिता राजमार्गेऽथ, तमालेख्यपट स्फुटम्।
विस्तार्य तस्थौ श्रीमत्या मनोरथमिवाऽलघुम्॥
—त्रिषष्ठि १।१।६४९–६५०

७० अत्रास्मद्भवसम्बन्ध पूर्वोऽलेखि सविस्तरम्।
श्रीप्रभाधिपता साक्षात् पश्यामीवेह मामिकाम्॥
अहो स्त्रीरूपमत्रेद नितरामभिरोचते।
स्वयम्प्रभाङ्गसवादि विचित्राभरणोज्ज्वलम्॥
—महापुराण श्लो० १२१–१२२ पर्व ७, पृ० १४८

(ख) गामेति पण्डिताऽप्युक्ता श्रीमत्या पार्श्वमेत्य च।
तत्सर्वमाख्यत् हृदयविशल्यकरणौषधम्॥
—त्रिषष्ठि १।१।६८२

७१. पितुर्व्यज्ञपयत् तच्च, श्रीमती पण्डितामुखात्।
अस्वातन्त्र्य कुलस्त्रीणा, धर्मो नैसर्गिको यत॥
—त्रिषष्ठि १।१।६८३

७२. तद्गिरामुदित सद्य स्तनितेनेव बर्हिण।
वज्रसेननृपो वज्रजङ्घमाजूहवत् तत॥

महापुराणकार ने भी प्रस्तुत प्रसग को कुछ हेर-फेर के साथ निरूपित किया है, पर तथ्य यही है।[७३]

श्रीमती के साथ वज्रजंघ पुन. भोगो मे आसक्त हुआ।[७४] सम्राट् सुवर्णजघ ने वज्रजघ को राज्य देकर स्वयं दीक्षा ग्रहण की।[७५] और चक्रवर्ती वज्रसेन ने भी अपने पुत्र पुष्कलपाल को राज्य देकर दीक्षा ली।[७६] वह तीर्थङ्कर हुए।[७७] चक्रवर्ती वज्रसेन के सयम

कुमारमूचे भूपालोऽस्मत्पुत्री श्रीमतीत्यसौ।
भवत्विदानी भवतो, गृहिणी पूर्वजन्मवत् ॥
तथेति प्रतिपन्ने च, कुमारेणोदवाहयत्।
श्रीमती भूपति प्रीतो, हरिणेवोदधि श्रियम् ॥

—त्रिषष्ठि १।१।६८५ से ६८७

(ख) तत पाणौ महाबाहु वज्रजङ्घोऽग्रहीन्मुदा।
श्रीमती तन्मृदुस्पर्शसुखामीलितलोचन ॥

—महापुराण श्लो० २४६, पर्व० ७, पृ० १६०

७३. महापुराण पर्व ६–७, पृ० १२२ से १६०।

७४ (क) विलसन् वज्रजङ्घोऽपि, श्रीमत्या सह कान्तया।
उवाह लीलया राज्यमम्भोजमिव कुञ्जर ॥

—त्रिषष्ठि १।१।६६१

(ख) महापुराण, श्लो० १–३२, पर्व ८, पृ० १६७–१६६

७५ योग्य ज्ञात्वा वज्रजङ्घ, स्वर्णजङ्घोऽथ भूपति।
राज्ये निवेशयामास, स्वय दीक्षामुपाददे ॥

—त्रिषष्ठि १।१।६६६

(ख) अभिषिच्य सुत राज्ये वज्रजङ्घमतिष्ठिपत् ॥५६
स राज्यभोगनिर्विण्ण. तूर्णं यमधरान्तिके।
नृपै. सार्द्धं सहस्रार्द्धमितैर्दीक्षामुपाददे।

—महापुराण श्लो० ५६–५७, पर्व ८ पृ० १७१

७६. सूनोः पुष्कलपालस्य, दत्त्वा राज्यश्रियं निजाम्।
प्राव्राजीद् वज्रसेनोऽपि, जज्ञे तीर्थकरश्च स ॥

—त्रिषष्ठि १।१।६६०

७७. त्रिषष्ठि १।१।६६०।

लेने के पश्चात् सीमाप्रान्तीय राजा पुष्करपाल की आज्ञा का उलंघन करने लगे। वज्रजघ उसकी सहायतार्थ गया और शत्रुओ पर विजय वैजयन्ती फहराकर पुन अपनी राजधानी लौट रहा था कि उसे ज्ञात हुआ कि प्रस्तुत अरण्य मे दो मुनियो को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है और उनके दिव्य प्रभाव से दृष्टिविष सर्प भी निर्विष हो गया है।[७८] वज्रजघ मुनियो के दर्शन हेतु गया। उपदेश सुन वैराग्य उत्पन्न हुआ।[७९] पुत्र को राज्य देकर सयम ग्रहण करूँगा, इस भावना के साथ वह वहाँ से प्रस्थान कर राजधानी पहुँचा।[८०] इधर पुत्र ने सोचा कि पिताजी जीते जी मुझे राज्य देंगे नही, तदर्थ उसने उसी रात्रि को वज्रजंघ के महल मे जहरीला धुआँ फैलाया, जिसकी गध से वज्रजंघ और 'श्रीमती' दोनो ही मृत्यु को प्राप्त हुए।[८१]

महापुराणकार आचार्य जिनसेन ने प्रस्तुत घटना का इस रूप मे चित्रण किया है—"वज्रदन्त चक्रवर्ती ने अपने लघुभ्राता अमिततेज

---

७८. उत्पेदे केवलज्ञान, द्वयोरत्राऽनगारयो ।
तत्र देवागमोद्योताद् दृग्विषो ऽनिर्विषोऽभवत् ॥
—त्रिषष्ठि १।१।७०२

७९ त्रिषष्ठि १।१।७०८–७०९ ।

८०. तदिदानी पुरी गत्वा, दत्त्वा राज्य च सूनवे ।
हसस्येव गति हस श्रयिष्येऽह पितुर्गतिम् ॥
सवादिन्या व्रतादानेऽनुस्यूतमनसेव स ।
सहित श्रीमतीदेव्या, प्राप लोहार्गलपुरम् ॥
—त्रिषष्ठि १।७१०–७११

८१. पुत्तेण रज्जकखिणा वासघरे जोगधूवप्पयोगेण मारितो ।
—आव० मल० वृ० प० १५८

विषधूप व्यधात् पुत्रस्तयोस्तु सुखसुप्तयो. ।
कस्त निरोद्धुमीश स्याद्, गृहादग्निमिवोत्थितम् ?
तद्धूपधूमैरधिकैर्जीवाकर्षाङ्कुरैरिव ।
घ्राणप्रविष्टैस्तौ सद्यो, दम्पती मृत्युमापतु ॥
—त्रिषष्ठि १।१।७१४–७१५

के पुत्र पुण्डरीक को राज्य देकर दीक्षा ली। पुण्डरीक अल्पवयस्क था, अत चक्रवर्ती की पत्नी लक्ष्मी ने वज्रजघ को सन्देश भेजा।[८२] उस सन्देश से वह सहायतार्थ प्रस्थान करता है कि मार्ग मे दो चारण लब्धिधारी मुनिवरो के दर्शन होते हैं। वह उन्हे आहार दान देता है।[८४] और मुनि वज्रजंघ व श्रीमती के आगामी भावो का निरूपण

---

८२. चक्रवर्ती वनं यात सपुत्रपरिवारक ।
पुण्डरीकस्तु राज्येस्मिन् पुण्डरीकानन स्थित. ॥
क्व चक्रवर्तिनो राज्य क्वायं वालोऽतिदुर्वल. ।
तदय पुङ्गवैर्धार्ये भरे दम्यो नियोजित ॥
वालोऽयमवले चावा राज्यञ्चेदमनायकम् ।
विशीर्णप्रायमेतस्य पालन त्वयि तिष्ठते ॥
अकालहरण तस्मात् आगन्तव्य महाधिया ।
त्वयि त्वत्सन्निधानेन भूयाद् राज्यमविप्लवम् ॥

—महापुराण श्लो० ९५–९८ पर्व० ८ पृ० १७५

(ख) नगर्यां पुण्डरीकाह्व प्रतिष्ठाप्य स्वपुत्रजम् ।
प्रवव्राज नरेन्द्रोन्द्रो वहुभि क्षत्रियैरसौ ॥

—पुराणसार सग्रह दामनन्दी श्लोक० ३२, स० २, पृ० २४

८३. तस्मिन्नेवाह्नि सोऽह्नाय प्रस्थानमकरोत् कृती ।

—महापुराण श्लो० ११८ पर्व० ८ पृ० १७७

(ख) चिन्तागतिमनोगत्योस्तयो श्रुत्वा तु वाचिकम् ।
निरगाता ससैन्यौ तु तूर्णं मतिवरोदितौ ॥

—पुराणसार श्लो० ३६ सर्ग २, पृ० २४

८४. ततो दमवराभिख्य श्रीमानम्बरचारण ।
सम सागरसेनेन तन्निवेशमुपाययौ ॥

—महापुराण श्लो० १६७, पर्व० ८, पृ० १८१

श्रद्धादिगुणसम्पत्या गुणवत्म्या विशुद्धिभाक् ।
दत्त्वा विधिवदाहार पञ्चाश्चर्याण्यवाप स ॥

—महापुराण श्लो० १७३, पर्व ८, पृ० १८२

करते हुए बताते है कि सम्राट् आप आठवें भव मे तीर्थङ्कर बनेंगे।[८५] 'श्रीमती' का जीव प्रथम दानधर्म का प्रवर्तक श्रेयास होगा।[८६] मुनि की भविष्यवाणी को सुनकर दोनो अत्यन्त आह्लादित होते है।

वहाँ से सम्राट् वज्रजघ पुण्डरीकिणी नगरी जाकर महारानी को आश्वस्त करते है और उनके राज्य की सुव्यवस्था कर पुन अपने नगर लौटते है।[८७]

एक दिन सम्राट् का शयनागार अगर आदि सुगन्धित द्रव्यो की तीव्र गन्ध से महक रहा था। द्वारपाल उस दिन गवाक्ष खोलना भूल गया, जिसमे धूप के धुएँ के कारण श्वास रुक जाने से दोनो की मृत्यु हो गई।[८८]

(ख) दत्वा सागरसेनाय दान दमवराय च।
आदाय नवपुण्यानि सम्प्राप्तौ पुण्डरीकिणीम् ॥
—पुराणसार श्लो० ३८ सर्ग २, पृ० २४

८५. इतोष्टमे भवे भाविन्यपुनर्भवता भवान्।
भवितामी च तत्रैव भवे सेत्स्यन्त्यसशयम् ॥
—महापुराण श्लो० २४४। पर्व ८, पृ० १८७

८६ श्रीमती च भवत्तीर्थे दानतीर्थप्रवर्तक।
श्रेयान् भूत्वा पर श्रेय श्रयिष्यति न सशय ॥
—महापुराण श्लो० २४६ पर्व ८, पृ० १८७

८७. दृष्ट्वा देवी कुमारञ्चाप्यनुशिष्य वचोऽमृतै.।
किञ्चित्कालमुषित्वात्र जग्मतु स्वपुर पुन.॥
—पुराणसार श्लोक ४० द्वि० स० पृ० २४

८८ कालागुरुकधूपाढ्ये शयितौ गर्भवेश्मनि।
मृत्वोत्तरकुरुष्वास्तामाशु दानेन दम्पती ॥
—पुराणसार श्लो० ४१ पर्व० २, पृ० २४

(ख) अथ कालागुरूद्दामधूपधूमाधिवासिते।
मणिप्रदीपकोद्योतदूरीकृततमस्तरे ॥

के पुत्र पुण्डरीक को राज्य देकर दीक्षा ली। पुण्डरीक अल्पवयस्क था, अत चक्रवर्ती की पत्नी लक्ष्मी ने वज्रजघ को सन्देश भेजा।[८२] उस सन्देश से वह सहायतार्थ प्रस्थान करता है कि मार्ग मे दो चारण लब्धिधारी मुनिवरो के दर्शन होते हैं। वह उन्हे आहार दान देता है।[८४] और मुनि वज्रजंघ व श्रीमती के आगामी भावो का निरूपण

---

८२ चक्रवर्ती वनं यात सपुत्रपरिवारक ।
पुण्डरीकस्तु राज्येस्मिन् पुण्डरीकानन स्थित ।।
क्व चक्रवर्तिनो राज्य क्वाय बालोऽतिदुर्वल ।
तदय पुङ्गवैर्धर्ये भरे दम्यो नियोजित ।।
वालोऽयमवले चावा राज्यञ्चेदमनायकम् ।
विशीर्णप्रायमेतस्य पालन त्वयि तिष्ठते ।।
अकालहरण तस्मात् आगन्तव्य महाधिया ।
त्वयि त्वत्सन्निधानेन भूयाद् राज्यमविप्लवम् ।।

—महापुराण श्लो० ६५–६८ पर्व० ८ पृ० १७५

(ख) नगर्यां पुण्डरीकाह्व प्रतिष्ठाप्य स्वपुत्रजम् ।
प्रवव्राज नरेन्द्रोन्दो वहुभि. क्षत्रियैरसौ ।।

—पुराणसार सग्रह दामनन्दी श्लोक० ३२, स० २, पृ० २४

८३ तस्मिन्नेवाह्नि सोऽह्नाय प्रस्थानमकरोत् कृती ।

—महापुराण श्लो० ११८ पर्व० ८ पृ० १७७

(ख) चिन्तागतिमनोगत्योस्तयो श्रुत्वा तु वाचिकम् ।
निरगाता ससैन्यौ तु तूर्णं मतिवरोदितौ ।।

—पुराणसार श्लो० ३६ सर्ग २, पृ० २४

८४. ततो दमवराभिख्य श्रीमानम्वरचारण ।
समं सागरसेनेन तन्निवेशमुपाययौ ।।

—महापुराण श्लो० १६७, पर्व० ८, पृ० १८१

श्रद्धादिगुणसम्पत्या गुणवत्स्या विशुद्धिभाक् ।
दत्त्वा विधिवदाहार पञ्चाश्चर्याण्यवाप स ।।

—महापुराण श्लो० १७३, पर्व ८, पृ० १८२

करते हुए बताते है कि सम्राट् आप आठवे भव मे तीर्थङ्कर बनेंगे।[८५] 'श्रीमती' का जीव प्रथम दानधर्म का प्रवर्तक श्रेयास होगा।[८६] मुनि की भविष्यवाणी को सुनकर दोनो अत्यन्त आह्लादित होते है।

वहाँ से सम्राट् वज्रजघ पुण्डरीकिणी नगरी जाकर महारानी को आश्वस्त करते है और उनके राज्य की सुव्यवस्था कर पुन अपने नगर लौटते है।[८७]

एक दिन सम्राट् का शयनागार अगर आदि सुगन्धित द्रव्यो की तीव्र गन्ध से महक रहा था। द्वारपाल उस दिन गवाक्ष खोलना भूल गया, जिसमे धूप के धुएँ के कारण श्वास रुक जाने से दोनो की मृत्यु हो गई।[८८]

(ख) दत्वा सागरसेनाय दान दमवराय च।
आदाय नवपुण्यानि सम्प्राप्तौ पुण्डरीकिणीम् ॥
—पुराणसार श्लो० ३८ सर्ग २, पृ० २४

८५ इतोऽष्टमे भवे भाविन्यपुनर्भवता भवान्।
भवितामी च तत्रैव भवे सेत्स्यन्त्यसशयम् ॥
—महापुराण श्लो० २४४। पर्व ८, पृ० १८७

८६ श्रीमती च भवत्तीर्थे दानतीर्थप्रवर्तक।
श्रेयान् भूत्वा पर श्रेय श्रयिष्यति न सशय ॥
—महापुराण श्लो० २४६ पर्व ८, पृ० १८७

८७. दृष्ट्वा देवी कुमारञ्चाप्यनुशिष्य वचोऽमृतैं।
किञ्चित्कालमुषित्वात्र जग्मतु स्वपुर पुन ॥
—पुराणसार श्लोक ४० द्वि० स० पृ० २४

८८. कालागुरुकधूपाढ्ये शयितौ गर्भवेश्मनि।
मृत्वोत्तरकुरुष्वास्तामाशु दानेन दम्पती ॥
—पुराणसार श्लो० ४१ पर्व० २, पृ० २४

(ख) अथ कालागुरूद्दामधूपधूमाधिवासिते।
मणिप्रदीपकोद्योतदूरीकृततमस्तरे ॥

[७] युगल

वहाँ से दोनो ही आयुपूर्ण कर उत्तर कुरु मे युगल-युगलिनी बने।[८९] इसके अतिरिक्त श्वेताम्बर ग्रन्थो मे अन्य वर्णन नही है।

महापुराण व पुराणसार के मन्तव्यानुसार उस समय उस युगल-युगलिनी को सूर्य-प्रभदेव के गगनगामी विमान को निहारकर जाति स्मरण होता है[९०] और उसी समय वहाँ पर लब्धिधारी मुनि आते है।[९१] नमन कर वे उनसे पूछते हैं कि 'हे प्रभो ! आप कौन हैं और कहाँ से आये हैं ?'

तत्र वातायनद्वारपिधानारुद्धधूमके ।
केशसंस्कारधूपोद्यद्धूमेन क्षणमूर्च्छितौ ॥
निरुद्धोच्छ्वासदौ स्थित्यात् अन्त किञ्चिदिवाकुलौ ।
दम्पती तौ निशामध्ये दीर्घनिद्रामुपेयतु ॥

—महापुराण श्लो० २१, २६, २७, २८ पर्व ६, पृ० १६२

८९. अथोत्तरकुरुष्वेतावुत्पन्नौ युग्मरूपिणौ ।
एकचिन्ताविपन्नाना गतिरेका हि जायते ॥

—त्रिषष्ठि १।१।७१६

(ख) मरिऊण उत्तरकुराए समारियो मिहुणगो जातो ।

—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५८

(ग) मरिऊण उत्तरकुराए सभारिओ मिहुणगो जाओ ।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ० ११६।१

९०. सूर्यप्रभस्य देवस्य नभोयायि विमानकम् ।
दृष्ट्वा जातिस्मरो भूत्वा प्रबुद्ध प्रियया समम् ॥

—महापुराण श्लो० ६५, पर्व ६, पृ० १६८

(ख) कदाचित्सूर्यदेवस्य दृष्ट्वा यान [यि] विमानकम् ।
अथ सस्मरतुर्जातिमन्योऽन्यप्रियवर्तिनौ ॥

—पुराणसार दाम० श्लो० ४४ पर्व २, पृ० २६

९१. तावच्चारणयोर्युग्म दूरादागच्छदैक्षत ।
तच्च तावनुगृह्णन्तौ व्योम्न समवतेरतु ॥

—महापुराण श्लो० ६६ पर्व ६, पृ० १६८

उत्तर मे ज्येष्ठ मुनि ने बतलाया कि 'पूर्व भव मे जिस समय तुम्हारा जीव महाबल राजा था उस समय मैं तुम्हारा स्वयबुद्ध मन्त्री था।[९२] संयम धारण कर मैं सौधर्म स्वर्ग मे स्वयप्रभ विमान मे मणिचूल नामक देव बना। वहाँ से प्रच्युत होकर मै पुण्डरीकिणी नगरी मे राजा प्रियसेन का ज्येष्ठपुत्र प्रीतिकर हुआ। मेरी माता का नाम सुन्दरी है और लघुभ्राता का नाम प्रीतिदेव है, जो सप्रति मेरे साथ ही हैं।[९३] हम दोनो ही भ्राताओ ने स्वयप्रभ जिनराज के समीप दीक्षा लेकर तपोबल से अवधिज्ञान तथा चारण ऋद्धि प्राप्त की है।[९४] आपको यहाँ जानकर हम आपको सम्यक्त्व रूपी रत्न देने के लिए आये हैं।'

(ख) आगतौ चारणौ वीक्ष्य सन्निविष्टौ शिलातले।
मूर्ध्ना प्रणम्य पप्रच्छ, के यूयमागता कुत ?

—पुराणसार श्लो० ४५, पर्व २, पृ० २६

९२ त्व विद्धि मा स्वयबुद्ध यतोऽबुद्धा प्रबुद्ध धी।
महाबलभवे जैन धर्मं कर्मनिवर्हणम्॥

—महापुराण श्लो० १०५, पर्व० ९, पृ० १९९

(ख) उवाचाह स्वयबुद्धस्तत्राकार्प सुसयमम्।
सौधर्मे मणिचूलाख्यो देव आस स्वयम्प्रभे॥

—पुराणसार ४६।२।२६

९३. महापुराण श्लो० १०८–१०९ पर्व० ९ पृ० १९९।

(ख) प्रच्युत पुण्डरीकिण्या सुन्दरी-प्रियसेनयो.।
भ्राता प्रीतिसुदेवोऽय ज्यायान् प्रीतिकरोऽस्म्यहम्॥

—पुराणसार ४७।२।२६

९४. स्वयम्प्रभजिनोपान्ते दीक्षित्वा वामलप्स्वहि।
सावधिज्ञानमाकाशचारणत्व तपोबलात्॥

—महापुराण ११०।९।१९९

(ख) स्वयम्प्रभार्हत पार्श्वे दीक्षितौ प्राप्तलीलिकौ।

—पुराणसार ४८।२।२६

सम्यक्त्व रूपी रत्न से बढकर विश्व मे न कोई वस्तु है, न हुई है और न होगी ही। इसी से भव्य प्राणियो ने मुक्ति प्राप्त की है तथा आगे प्राप्त करेंगे। अतएव सम्यक्त्व सबसे श्रेष्ठ है।[९५] जब देशनालब्धि और काललब्धि आदि बहिरग कारण और करण लब्धि-रूप अन्तरग कारण मिलता है तभी भव्यप्राणी विशुद्ध सम्यग्दर्शन का पात्र बन सकता है।[९६] जो पुरुष एक अन्तर्मुहूर्त के लिए भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है वह इस ससार रूपी बेल को काट कर बहुत ही लघु कर देता है।[९७] इस प्रकार सम्यग्दर्शन के महत्त्व को समझाकर और दोनो को रत्नत्रय मे आद्य-रत्न सम्यक्त्व को देकर वे चारणमुनि अपने स्थान चले गये।[९८]

---

९५ इतोऽन्यदुत्तर नास्ति न भूत न भविष्यति।
इह सेत्स्यन्ति सिद्धाश्च तस्मात्सम्यक्त्वमुत्तमम्॥

—पुराणसार ४९।२।२६

९६ देशनाकाललब्ध्यादिबाह्यकारणसम्पदि।
अन्त करणसामग्र्या भव्यात्मा स्याद् विशुद्धकृत्॥

—महापुराण ११६।९।१९९

९७. लब्धसद्दर्शनो जीवो मुहूर्तमपि पश्य य।
ससारलतिका छित्त्वा कुरुते ह्रासिनीमसौ॥

—महापुराण १३५।९।२०१

९८. दत्वा ताभ्या त्रिरत्नाद्य गताम्बरचारिणौ।

—पुराणसार ५१।२।२६

(ख) इति प्रीतिङ्कराचार्यवचन स प्रमाणयन्।
सजानिरादधे सम्यग्दर्शन प्रीतमानस॥
पुनर्दर्शनमस्त्वार्य! सद्धर्म मा स्म विस्मर।
इत्युक्त्वान्तर्हितौ सद्य चारणौ व्योमचारणौ॥

—महापुराण १४८।१५७।९। पृ० २०२–२०३

[८] सौधर्मकल्प

वहाँ से वे आयु पूर्ण कर सौधर्मकल्प मे देव बने।[९९] महापुराण तथा पुराणसार मे उनका नाम श्रीधर देव लिखा है।[१००]

[९] जीवानन्द वैद्य

वहाँ से च्यवकर धन्नासार्थवाह का जीव जम्बूद्वीप के क्षितिप्रतिष्ठ नगर मे सुविधि वैद्य का पुत्र जीवानन्द वैद्य बना।[१०१] उस समय वहाँ पाँच अन्य जीव भी उत्पन्न होते हैं। प्रथम सम्राट्पुत्र महीधर,

---

९९ ततो सोहम्मे कप्पे देवो उववन्नो।

—आवश्यक निर्युक्ति, मल० वृ० १५८

(ख) तओ सोहम्मे कप्पे देवो जाओ।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ११६।१

(ग) क्षेत्रानुरूपमायुश्च पूरयित्वा तथा युतौ।
तौ विपद्योदपद्येतां, सौधर्मे स्नेहलौ सुरौ॥

—त्रिषष्ठि १।१।७१७

(घ) अन्ते गृहीतसम्यक्त्वौ मृत्वा सौधर्ममीयतु ।

—पुराणसार ५१।२।२६

१०० विमाने श्रीप्रभे तत्र नित्यालोके स्फुरत्प्रभे।
स श्रीमान् वज्रजङ्घार्यं श्रीधराख्य सुरोऽभवत्।।

—महापुराण १८५।६।२०६

(ग) श्रीप्रभे श्रीधरो जज्ञे आर्यो देव स्वयम्प्रभे।
सम्यक्त्वात्स्त्रैणमुज्झित्वा साऽऽर्या जाता स्वयप्रभ ॥

—पुराणसार ५२।२।२६

१०१ ततो आउक्खए चइऊण महाविदेहवासे खितिपइट्ठिते नगरे विज्जपुत्तो आयातो।

—आवश्यक मल० वृत्ति० पृ० १५८

(ख) आवश्यक चूर्णि० पृ० १३२।

द्वितीय मन्त्रीपुत्र सुबुद्धि, तृतीय सार्थवाहपुत्र पूर्णभद्र, चतुर्थ श्रेष्ठिपुत्र गुणाकर और पाँचवाँ ईश्वरदत्तपुत्र केशव [श्रीमती का जीव] इन छहो मे पय-पानी सा प्रेम था।[१०२]

अपने पिता की तरह जीवानन्द भी आयुर्वेदविद्या मे प्रवीण था।[१०३] उसकी प्रतिभा की तेजस्विता से सभी प्रभावित थे। एक दिन सभी स्नेही साथी वार्तालाप कर रहे थे कि वहाँ एक दीर्घतपस्वी भिक्षा के लिए आये। वे गृहस्थाश्रम मे पृथ्वीपाल राजा के पुत्र थे, जिन्होने राज्यश्री को त्यागकर उग्रतपस्या प्रारम्भ की थी। असमय व अपथ्य भोजन के सेवन से वे कृमि-कुष्ठ की भयकर व्याधि से ग्रसित हो गये थे।[१०४] उन्हे निहारकर समाट् पुत्र महीधर ने कहा—मित्रवर!

---

१०२ (क) उत्तरकुरु सोहम्मे विदेह तेगिच्छियस्स तत्थ सुतो।
रायसुयसेट्ठिमच्चामत्थाहसुया वयसा से॥
—आवश्यक नियुंक्ति गा० १६६

(ख) जद्दिवस तु जातो तद्दिवसमेगाहजाया से इमे चत्तारि वयसया अणुरत्ता अविरत्ता, त जहा—रायपुत्तो, सेट्ठिपुत्तो, अमच्चपुत्तो, सत्थवाहपुत्तोत्ति। ते सहसवड्ढिता महपसुकीलिया, धणसत्थवाहजीवोऽवि महाविज्जो जातो।
—आवश्यक मल० वृ० प० १५८

(ग) आवश्यक चूर्णि, पृ० १३२।
(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ० ११६
(ङ) त्रिषष्ठि १।१।७१६ से ७२८
(च) कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी—राजेन्द्रसूरि० पृ० २२१

१०३ विदाञ्चकाराऽऽयुर्वेद जीवानन्दोऽपि पैतृकम्।
अष्टाङ्गमौषधीश्चाऽपि, रसवीर्यविपाकतः॥
—त्रिषष्ठि १।१।७२६

१०४ एकदा वैद्यपुत्रस्य, जीवानन्दस्य मन्दिरे।
एतेषा तिष्ठतामेक साधुर्भिक्षार्थमाययौ॥
पृथ्वीपालस्य राज्ञ स, सूनुर्नाम्ना गुणाकर।
राज्य मलमिवोत्सृज्य शमसाम्राज्यमाददे॥

आप अन्य की चिकित्सा करते है, चिकित्सा करने में कुशल भी है, पर मुझे अत्यन्त परिताप है कि आपके अन्तर्मानस मे दया की निर्मल स्रोतस्विनी प्रवाहित नही हो रही है। कृमिकुष्ठ रोग से ग्रसित मुनि को देखकर भी आप चिकित्साहेतु प्रवृत्त नही हो रहे हैं। [१०५]

प्रत्युत्तर मे जीवानन्द ने कहा—मित्र! तुम्हारा कथन सत्य है,

सरिदोघ इव ग्रीष्मातपेन तपसा कृश।
कृमिकुष्ठाभिभूतस्य सोऽकालापथ्यभोजनात्॥
सर्वाङ्गीण कृमिकुष्ठाधिष्ठितोऽपि स भेषजम्।
ययाचे न क्वचित् कायानपेक्षा हि मुमुक्षव॥
गोमूत्रिकाविधानेन, गेहाद् गेह परिभ्रमन्।
षष्ठस्य पारणे दृष्ट, स तैर्निजगृहाङ्गणे॥
—त्रिषष्ठि १।१।७३२ से ७३६

१०५ वेज्जसुयस्स य गेहे किमिकुट्ठोवद्दुय जइ दट्ठु।
बेंति य ते विज्जसुय करेहि एयस्स तेगिच्छं॥
—आवश्यकनियुक्ति गा० १७०

(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १३२

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११६

(घ) ते वयसया अन्नया कयाइ तस्स विज्जस्स घरे एगतो सहिया सन्निसन्ना अच्छन्ति, तत्थ साहू महप्पा किमिकुट्ठेण गहितो भिक्खानिमित्तमइगतो, तेहिं सप्पणय सहास सो विज्जो भण्णइ-तुब्भेहिं नाम सव्वो लोगो खाइयव्वो, न तुब्भेहि तवस्सिस्स वा अणाहस्स वा किरिया कायव्वा।
—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५८

(ङ) महीधर कुमारेण, स किञ्चित् परिहासिना।
जीवानन्दो निजगदे, जगदेकभिषक् तत।
अस्ति व्याधे परिज्ञान ज्ञानमस्त्यौषधस्य च।
चिकित्साकौशल चाऽस्ति, नास्ति व केवल कृपा॥
—त्रिषष्ठि १।१।७३७-७३८

(च) कल्पार्थ प्रबोधिनी पृ० २२१।

पर इस रोग की चिकित्सा के लिए जिन औषधियो की आवश्यकता है, वे मेरे पास नही है।[१०६]

मित्रों ने कहा—बताइये किन-किन औषधियो की आवश्यकता है ? वे कहाँ पर उपलब्ध हो सकेगी ? हम मूल्य देंगे और जैसे भी होगा, लाने का प्रयास करेंगे।

जीवानन्द ने कहा—रत्नकम्बल, गोशीर्षचन्दन, और लक्षपाक तैल। पूर्व की दो औषधियाँ मेरे पास नही है।[१०७]

उसी क्षण वे पाँचो साथी औषध लाने के लिए प्रस्थित हुए। औषधियो की अन्वेषणा करते हुए एक श्रेष्ठी की विपणि पर पहुँचे।[१०८] श्रेष्ठी से औषधहेतु जिज्ञासा व्यक्त करने पर श्रेष्ठी ने

---

१०६ सो भणइ-करेमि, कि पुण मम ओसहाणि काइ वि नत्थि।

—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५८

(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १३२

(ग) चिकित्सनीय एवाऽहो !, महामुनिरय मया।
औपधानामसामग्री, किन्तु यात्यन्तरायताम् ॥

—त्रिपष्टि० १।१।७४५

१०७ ते भणन्ति अम्हे मोल्ल देमो, किं ओसह ? जाइज्जउ, सो भणइ—कम्बलरयण गोसीसचन्दण, तइय पुण ज सयसहस्सपागतेल्ल त ममवि अत्थि।

—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५८

(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० १३२।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति पृ० ११६।

(घ) तत्रैक लक्षपाक मे, तैलमस्तीह नाऽस्ति तु।
गोशीर्षचन्दन रत्नकम्बलञ्चाऽऽनयन्तु तन् ॥

—त्रिपष्ठि १।१।७४६

१०८. ताहे मग्गिउ पवत्ता, आगमिय च णेहि जहा अमुगस्स वाणियगस्स अत्थि दोऽवि एयाणि, ते गया तस्स सगास दो लक्खाणि घेत्तु।

—आवश्यक मल० वृत्ति पृ० १५८

कहा—प्रत्येक वस्तु का मूल्य एक-एक लाख दीनार है। वे उस मूल्य को देने के लिए ज्योंही प्रस्तुत हुए, त्योंही श्रेष्ठी ने प्रश्न किया—ये अमूल्य वस्तुएँ किस लिए चाहिएँ ? उन्होने बताया—मुनि की चिकित्सा के लिए। मुनि का नाम सुनते ही श्रेष्ठी सोचने लगा कि "इन युवको की धार्मिक निष्ठा अपूर्व है।"[१०९] उसने बिना मूल्य लिये औषधियाँ देदी। वे उन वस्तुओ को लेकर वैद्य के पास गये।

जीवानन्द वैद्य भी अपने स्नेही साथियो के साथ उन औषधियो को तथा मृत-गोचर्म को लेकर उद्यान मे पहुँचा, जहाँ मुनि ध्यान मुद्रा मे अवस्थित थे।[११०] उन्होने मुनि को वन्दन किया और उनकी स्वीकृति

(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० १३२।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति ११६।

(घ) आनेष्यामो वयमिति, प्रोच्य पञ्चाऽपि तत्क्षणम्।
ते ययुर्विपणिश्रेणी स्वस्थान सोऽप्यगान्मुनि ॥
रत्नकम्बल-गोशीर्ष, मूल्यमादाय यच्छ न.।
इत्युक्तस्तैर्वणिग्वृद्धस्ते ददानोऽब्रवीदिदम् ॥

—त्रिषष्ठि १।१।७४७–७४८

१०९ ततो वाणियगो ससम्भन्तो भणति—किं देमि ? ते भणन्ति—कम्बल-रयणं गोसीसचन्दणं च। तेण भणइ कि एएहिं कज्ज ? ते भणन्ति साहुस्स किरिया कायव्वा। तेण भणइ—एव, तो अलाहि मम मोल्लेण, इहरहा चेव गेण्हह, करेह साहुणो किरिय।

—आवश्यक मल० पृ० १५९

(ख) तेल्ल तेगिच्छिसुतो कम्बलग चन्दणं च वाणियतो।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७१

(ग) आवश्यक चूर्णि, पृ० १३३

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ० ११६।

(ङ) त्रिषष्ठि १।१।७५०–७५६।

११०. (क) ते विज्जसुयप्पमिइणो सव्वे घेत्तूण ताणि ओसहाणि गया साहुणो पास जत्थ सो उज्जाणे पडिम ठितो, पासन्ति पडिमागय साहु।

—आवश्यक मल० प० १५९

लिए बिना ही आरोग्य प्रदान करने हेतु सर्वप्रथम लक्षपाक तैल से मर्दन किया। उष्णवीर्य तैल के प्रभाव से शरीरस्थ कृमियाँ बाहर निकलने लगी तो उन्होने शीतवीर्य रत्नकम्बल से मुनि के शरीर को आच्छादित कर दिया, जिससे वे शरीरस्थ कृमि रत्न-कम्बल मे आगई। उसके पश्चात् रत्न कम्बल की कृमियो को मृत-गोचर्म मे स्थापित कर दिया, जिससे उनका प्राणघात न हो। उसके पश्चात् पुन मर्दन किया और रत्नकम्बल से आच्छादित करने पर मासस्थ कृमियाँ निकल आई। तृतीय बार पुन. मर्दन किया और रत्नकम्बल ओढा देने पर अस्थिगत कृमियाँ निकल गई। जब शरीर कृमियो से मुक्त हो गया तो उस पर गोशीर्षचन्दन का लेप किया, जिससे मुनि पूर्ण स्वस्थ हो गये।[१११]

मुनि की स्वस्थता देखकर छहो मित्र अत्यन्त प्रमुदित हुए। मुनि के तात्त्विक प्रवचन को सुन कर छहो को ससार से विरक्ति हुई, उन्होंने दीक्षा ग्रहण की और उत्कृष्ट सयम की साधना की।[११२]

---

१११. ताहे तेल्लेण सो साहू पढम अब्भिगितो, त चेद तेल्ल रोमकूवेहि सव्व अइगय, तम्मि य अइगए किमिया मव्वे सखुद्धा ताहे ते निग्गए, दट्ठूण कवलरयणेण सो साहू पाउत्तो, त सीयल, तेल्ल च उण्हवीरिय ते किमिया तत्थ लग्गा, ताहे पुव्वाणिय गोकडेवरे पप्फोडिय, ते सव्वे पडिया, ततो सो साहू चन्दणेण लित्तो, जातो समासत्थो, एव तिन्निवारे अब्भगिऊण सो साहू तेहि नीरोगो कतो।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५६

(ख) त्रिषष्ठि १।१।७५८ से ७७६।

११२. (क) पच्छा ते सड्ढा जाया, पच्छा समणा।

—आवश्यक नि० मल० वृत्ति, पृ० १५६

(ख) ते पच्छा साहू जाता।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ० ११७

(ग) ते षडप्येकदा जातसवेगा. साधुसन्निधौ।
धीमन्तो जगृहुर्दीक्षा, मर्त्यजन्मतरो फलम्॥

—त्रिषष्ठि १।१।७८०

महापुराण और पुराणसार मे जीवानन्द वैद्य का भव नही बताया है। उन्होने लिखा है कि देवलोक से च्युत होकर जम्बूद्वीपस्थ वत्सकावती देश की सुसीमा नगरी मे वह सुदृष्टि राजा और सुन्दर-नन्दा रानी की कुक्षि से सुविधि पुत्र हुआ, और श्रीमती का जीव उसी का पुत्र केशव हुआ।[११३] केशव के प्रेम के कारण प्रारम्भ मे उसके पिता सुविधि ने संयम न लेकर श्रावक व्रत स्वीकार किया[११४] और अन्त मे दीक्षा लेकर संलेखनायुक्त समाधि मरण प्राप्त किया।[११५]

[१०] अच्युत देवलोक

आयु पूर्ण कर जीवानन्द का जीव तथा अन्य साथी बारहवे देवलोक मे उत्पन्न हुए।[११६]

---

११३. श्रीधरोऽथ दिवश्च्युत्वा जम्बूद्वीपमुपाश्रिते ।
प्राग्विदेहे महावत्सविषये स्वर्गसन्निभे ॥
सुसीमानगरे जज्ञे सुदृष्टिनृपते सुत ।
मातु सुन्दरनन्दाया सुविधिर्नाम पुण्यधी ॥
—महापुराण श्लो० १२१–१२२ पर्व १०, पृ० २१८

(ख) स समुद्रोपम भोग भुक्त्वाऽत श्रीधरश्च्युत ।
प्राग्विदेहेषु वत्साह्वे सुसीमायामुभौ पुरी ॥
देव्या सुन्दरनन्दाया सुदृष्टे सुविधि सुत ।
तत्सूनु केशवो नाम्ना सुन्दर्यामितरोऽभवत् ॥
—पुराणसार ६१।६२।२।२८

११४. नृपस्तु सुविधि पुत्रस्नेहाद गार्हस्थ्यमत्यजन् ।
उत्कृष्टोपासकस्थाने तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥
—महापुराण १५८।१०।२२२

(ख) सुविधि केशवस्नेहादुत्कृष्ट: श्रावकोऽभवत् ।
—पुराणसार ६५।२।३०

११५. अथावसाने नैर्ग्रन्थ्यी प्रव्रज्यामुपसेदिवान् ।
सुविधिर्विधिनाराध्य, मुक्तिमार्गमनुत्तरम् ॥
—महापुराण १६६।१०।२२[illegible]

११६. साहू तिगिच्छिऊणं सामन्न देवलोगगमण च ।
—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७[illegible]

महापुराण और पुराणसार के अनुसार भी सुविधि का जीव बारहवे देवलोक मे ही उत्पन्न हुआ।[११७]

[११] वज्रनाभ

जीवानन्द का जीव देवलोक की आयु समाप्त होने पर पुष्कलावती विजय की पुण्डरीकिणी नगरी के अधिपति वज्रसेन राजा की धारिणी रानी की कुक्षि मे उत्पन्न हुआ।[११८] उत्पन्न होते

(ख) अहाउय पालइत्ता तम्मूलाग पचवि जणा अच्चुए उववण्णा।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, ११७

(ग) ततो अहाउय पालइत्ता सामण्ण, त मूलाग पचवि जणा अच्चुए कप्पे देवा उववन्ना।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५६

पडपि द्वादशे कल्पेऽच्युतनामनि तेऽभवन्।
शक्रसामानिकास्तादृग्, न सामान्यफल तप ॥

—त्रिपष्टि० १।१।७८६

११७ समाधिना तनुत्यागान् अच्युतेन्द्रोऽभवद् विभु।
द्वाविंशत्यब्धिसख्यातपरमायुर्महर्द्धिक ॥

—महापुराण, १७०।१०।२२२

(ख) समुत्पेदेऽच्युते कल्पे प्राप्य तत्र प्रतीन्द्रिताम् ॥

—पुराणसार ६६।२।३०

११८. पुण्डरिगिणिए य चुया ततो सुया वयरसेणस्स।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७२

(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १३३।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११७।

(घ) ततो देवलोगातो आउक्खए चइऊण इहेव जम्बुद्दीवे दीवे पुव्वविदेहे पुक्खलावइविजए पुंडरिगिणीए नयरीए वइरसेणरन्नो धारिणीए देवीए उदरे पढमो वइरनाभो नाम पुत्तो जातो, जो पुव्वभवे विज्जो आसि।

—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५६

ही माता ने चौदह महास्वप्न देखे। जन्म होने पर पुत्र का ना नाम "वज्रनाभ" रखा। पूर्व के पाँचो साथियो मे से चार क्रमश बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ, नामक उनके भ्राता हुए और एक उनका सारथी हुआ।[११९]

अपने ज्येष्ठ पुत्र वज्रनाभ को राज्य देकर सम्राट् वज्रसेन ने सयम ग्रहण किया, उत्कृष्ट सयम की साधना कर कैवल्य प्राप्त किया तथा तीर्थ की सस्थापना कर वे तीर्थङ्कर बने।[१२०]

सम्राट् वज्रनाभ पूर्वभव मे मुनि की सेवा शुश्रूषा करने के फलस्वरूप षट्खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् बने और शेष भ्राता माण्डलिक राजा हुए।[१२१] दीर्घकाल तक राज्य श्री का उपभोग करने के पश्चात् अपने पूज्य पिता तीर्थङ्कर वज्रसेन के प्रभावपूर्ण प्रवचनो को सुनकर उनके मानस मे, वैराग्य का उदधि उछाले मारने लगा।

---

११९ पढमोऽत्थ वयरनाहो बाहु सुबाहु य पीढ महपीढे।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७३

(ख) त्रिषष्ठि० १।१।७६१ से ७६५।

(ग) आद्य पीठो महापीठ सुबाहुश्च तृतीयक।
तुर्योऽथ महाबाहु भ्रातर पूर्वबान्धवा॥

—पुराणसार ७०।२।३०

१२० तेसि पिया तित्थयरो निक्खता तोऽवि तत्थेव।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७३

१२१ (क) वइरो चक्की जाओ, तेणं साहुवेयावच्चेण चक्कवट्टीभोया उदिण्णा, अवसेसा चत्तारि मडलिया रायाणो।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति ११८।१

(ख) वयरनाभो चक्कवट्टी जातो, इयरे चत्तारि मडलिया रायणो, एव सो वयरनाभो साहुवेयावच्चप्पभावेण उइन्ने चक्कवट्टिभोगे भु जइ।

—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५६

अपने प्रिय लघु-भ्राताओं तथा सारथी के साथ वज्रनाभ चक्रवर्ती ने प्रव्रज्या ग्रहण की।[१२२]

संयम ग्रहण करने के पश्चात् वज्रनाभ ने आगमों का गम्भीर अनुशीलन-परिशीलन करते हुए चौदह पूर्व तक अध्ययन किया और अन्य शेष भ्राताओं ने एकादश अङ्गों का।[१२३] अध्ययन के साथ ही उन्होंने उत्कृष्ट तप तथा अनेक चामत्कारिक लब्धियाँ प्राप्त की तथा अरिहन्त, सिद्ध, प्रवचन-प्रभृति बीस निमित्तों की आराधना से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध किया।[१२४]

---

१२२ इतो य तित्थयरवयरसेणस्स समोसरणं सो पिउपायमूलं चउहिं-वि सहोअरेहिं समं पव्वइतो।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५६

(ख) दत्वैश्य वज्रदन्ताय पीठाद्यैः भ्रातृभिः सह।
संयमे स्वपितुस्तीर्थे तस्थौ सधनदेवकः।

—पुराणसार ७४।२।३०

१२३. पढमो चउदसपुव्वी—

—आवश्यक निर्युक्ति० गा० १७४

(ख) तत्थ वइरनाभेण चौद्दस पुव्वाणि अहिज्जियाणि।

—आवश्यक चूर्णि० पृ० १३३

(ग) तत्थ वइरनाभेण चोद्दसपुव्वा अहिज्जिया, सेसावि चउरो एक्कारसंगविऊ जाया।

—आवश्यक मल० वृ० १६०।१

(घ) श्रुतसागरपारीणो, वज्रनाभोऽभवन् क्रमात्।
प्रत्यक्षा द्वादशाङ्गीव, जङ्गमैकाङ्गता गता॥
एकादशाङ्ग्या पारीणा, जाता बाह्वादयोऽपि ते।
क्षयोपशमवैचित्र्याच्चित्रा हि श्रुतसम्पदः॥

त्रिषष्ठि० १।१।८३६।८३७

१२४. वयरनाभेण विसुद्धपरिणामेणं वीसाहिं ठाणेहिं तित्थयरनामगोत्तं कम्मं बद्धं।

—आवश्यक मल० वृ० प० १६०।१

(ख) त्रिषष्ठि० १।१।८८२

आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि आदि के अनुसार प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के जीव ने बीस ही स्थानो की आराधना व साधना की। अन्य तीर्थङ्करो के जीवो ने एक, दो, तीन आदि[१२५] की आराधना करके ही तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध किया।

महापुराण व पुराणसार प्रभृति दिगम्बर-परम्परा के ग्रन्थों मे बीस[१२६] स्थानों के बदले सोलह भावनाओ का उल्लेख किया गया है[१२७] किन्तु शाब्दिक दृष्टि से अन्तर होने पर भी दोनो मे भावना की दृष्टि से विशेष कोई अन्तर नही है।

---

१२५ पढमो तित्थयरत्तं वीसहि ठाणेहिं कासीय।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७५

(ख) पुरिमेण य पच्छिमेण य एते सव्वेऽवि फासिया।
ठाणा मज्झिमएहिं जिणेहि एग दो तिन्नि सव्वे वा॥

—आवश्यक चूर्णि २–१०६ पृ० १३५

१२६ अरहत सिद्धपवयणगुरुथेरबहुस्सुएतवस्सीसु।
वच्छल्लया य एसिं अभिक्खनाणोवयोगे य॥
दंसणविणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारो।
खणलवतवच्चियाए वेयावच्चे समाही य॥
अप्पुव्वनाणगहणे सुयभत्ती पवयणे पहावणया।
एएहि कारणेहिं तित्थयरत्त लहइ जीवो॥

—आवश्यक निर्युक्ति० १७६ से १७८

(ख) णाया धम्मकहाओ श्रु० १।अ० ८

१२७. ततोऽसौ भावयामास भावितात्मा सुधीरधी.।
स्वगुरोर्निकटे तीर्थकृत्त्वस्याङ्गानि षोडश॥
सद्दृष्टि विनय शीलव्रतेष्वनतिचारताम्।
ज्ञानोपयोगमाभीक्ष्ण्यात सवेग चाप्यभावयत्॥
यथाशक्ति तपस्तेपे स्वयं वीर्यमहापयन्।
त्यागे च मतिमाधत्त ज्ञानसयमसाधने॥
सावधान समाधाने साधूना सोऽभवन् मुहुः।
समाधये हि सर्वोऽयं परिस्पन्दो हितार्थिनाम्॥

जैनसस्कृति की तरह ही बौद्धसंस्कृति ने भी बुद्धत्व की उपलब्धि के लिए दान, शील, नैष्कर्म्य, प्रज्ञा, वीर्य, शान्ति, सत्य अधिष्ठान [दृढ निश्चय], मैत्री, उपेक्षा [सुख दुख मे समस्थिति] दस पारमिताएँ [पाली रूप पारमी] अपनाना आवश्यक माना है।[१२८] दस पारमिताओ और वीसस्थानो मे भी अत्यधिक समानता है। तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रमरण संस्कृति की दोनो ही धाराओ ने तीर्थङ्कर व बुद्ध, बनने के लिए पूर्वभवो मे ही आत्म-मन्थन, चित्तग्रंथन, गुणो का उत्कीर्तन तथा गुणो का धारण करना आवश्यक ही नही, अनिवार्य माना है।

वज्रनाभ मुनि ने भी विशुद्ध परिणाम से श्वेताम्बर ग्रथानुसार

स वैयावृत्यमातेने, व्रतस्थेष्वामयादिपु ।
अनात्मतरको भूत्वा तपसो हृदय हि तत् ॥
स तेने भक्तिमर्हत्सु पूजामर्हत्सु निश्चलाम् ।
आचार्यान् प्रश्रयी भेजे मुनीनपि वहुश्रुतान् ॥
परा प्रवचने भक्ति आप्तोपज्ञे ततान स ।
न पारयति रागादीन् विजेतुं सन्ततानस ॥
अवश्यमवशोऽप्येप वशी स्वावश्यक दधौ ।
पड्भेद देशकालादिसव्यपेक्षमनूनयन् ॥
मार्गं प्रकाशयामास तपोज्ञानादिदीधिती- ।
दधानोऽसौ मुनीनेनो भव्याब्जानां प्रवोधक ॥
वात्सल्यमधिक चक्रे स मुनिर्धर्मवत्सल ।
विनेयान् स्थापयन् धर्मे जिनप्रवचनाश्रितान् ॥

—महापुराण श्लोक० ६८ से ७७, पर्व ११ पृ० २३३–३४

(ख) दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी सङ्घसाधुसमाधि- वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यवहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहा- णिर्मार्गप्रभावना प्रवचन वत्सलत्वमिति तीर्थकृत्त्वस्य ।

—तत्त्वार्थ सूत्र अ० ६ सू० २३

१२८. बौद्धधर्म दर्शन पृ० १८१–१८२।

वीस स्थानकों की[129] और दिगम्बर ग्रन्थानुसार सोलह भावनाओ[130] की आराधना कर तीर्थङ्कर नाम गोत्र का अनुबन्धन किया। अन्त मे मासिक सलेखनापूर्वक पादपोपगमसथारा करसमाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण किया।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि वज्रनाभ के शेष चारो लघु भ्राताओ मे से बाहुमुनि मुनियो की वैयावृत्य करता और सुबाहु मुनि परिश्रान्त मुनियो को विश्रामणा देता—[131] अर्थात् थके हुए मुनियो के अवयवो का मर्दन आदि करके सेवा करता। दोनो की सेवा भक्ति को निहार कर वज्रनाभ अत्यधिक प्रसन्न हुए

---

१२९. तत्थ पढमेण वइरणाभेण वीसाए कारणेहिं तित्थयरत्तं निवद्धं।

—आवश्यक चूर्णि० पृ० १३४

(ख) वइरणाभेण य विसुद्धपरिणामेण तित्थगरणामगोत्त कम्मं वद्धं ति।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ० ११८

१३०. इत्यमूनि महाधैर्यो मुनिश्चिरमभावयत्।
तीर्थकृत्त्वस्य सम्प्राप्तौ कारणान्येप पोडश॥

—महापुराण ७८।११।२३४

(ख) जगदर्श्यपण्यानि त्रैलोक्यक्षोभणानि च।
कारणानि च जैनस्य भावयामास पोडश॥

—पुराणसार ७।२।३२

१३१. (क) तत्थ वाहू सो तेसिं सव्वेसिं वेयावच्च करेति।
जो सो सुवाहु, सो भगवन्ताण कितिकम्म करेति।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १३३

(ख) तत्थ वाहु तेसिं वेयावच्च करेति, जो सुवाहू सो साहुणो वीसामेति।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० २१८

(ग) तत्थ वाहू तेंसि अन्नेसिं च साहूण वेयावच्च करेइ, जो सुवाहू सो साहुणो विस्सामेइ।

—आवश्यक मल० वृत्ति०

श्रौर उनकी प्रशंसा करते हुए बोले—तुमने सेवा श्रौर विश्रामरणा के द्वारा श्रपने जीवन को सफल किया है।[132]

ज्येष्ठ भ्राता के द्वारा श्रपने मझले भ्राताश्रों की प्रशंसा सुनकर पीठ, महापीठ मुनि के श्रन्तर्मानस मे ये विचार जागृत हुए कि हम स्वाध्याय श्रादि मे निरन्तर तन्मय रहते है, पर खेद है कि हमारी कोई प्रशसा नही करता, जबकि वैयावृत्य करने वालो की प्रशंसा होती है।[133] इस ईर्ष्याबुद्धि की तीव्रता से मिथ्यात्व श्राया श्रौर उन्होंने

---

१३२. एव ते करेंति वइरनाभो भगव श्रणुवूहति—अहो सुलद्धं जम्मजीवियफल ज साघूण वेयावच्च कीरइत्ति, परिसन्ता वा साधुणो वीसामिज्जन्ति, एव पसंसति।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १३३

(ख) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११८।

(ग) एवं ते करेंते भयव वयरनाभो-अणुवूहइ अहो सुलद्ध जम्म सहलीकय जीविय ज साहूण वेयावच्च कीरइ, परिस्सन्ते वा साहुणो विस्सामेइ।

—आवश्यक मल० वृत्ति० प० १६०।१

(घ) अहो! धन्याविमो वैयावृत्यविश्रामणाकरो।
इति बाहुसुबाहू तौ वज्रनाभस्तदाऽस्तवीत्॥

—त्रिपष्ठि० १।१।६०६

१३३. एव पससिज्जन्तेसु तेसु तेसिं दोण्हमग्गिल्लाण अपत्तिय भवति, अम्हे सज्झायन्ता ण पसंसिज्जामो, जो करेइ सो पससिज्जइ।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १३३–१३४

(ख) एव पससिज्जंतेसु तेसु तेसिं पच्छिमाण दोण्हवि पीढमहापीढाणं अप्पत्तिय भवइ, अम्हे सज्झायन्ता न पससिज्जामो जो करेइ सो पससिज्जइ, सच्चो लोगववहारोत्ति।

आवश्यक मल० वृ० प० १६०।१

(ग) तौ तु पीठ-महापीठौ, पर्यचिन्तयतामिति।
उपकारकरो यो हि स एवेह प्रशस्यते॥
आगमाध्ययनध्यानरतावनुपकारिणौ।
को नौ प्रशसत्वथवा, कार्यकृद्गृह्यको जनः॥

—त्रिपष्ठि १।१।६०७–६०८

स्त्री वेद का बन्धन किया। आलोचन-प्रतिक्रमण न करने पर स्वल्प दोष भी अनर्थ का कारण बन जाता है।[134]

सेवा के कारण बाहुमुनि ने चक्रवर्ती के विराट् सुखो के योग्य कर्म उपार्जित किये[135] और सुबाहु मुनि ने विश्रामणा के द्वारा लोकोत्तर बाहुबल को प्राप्त करने योग्य कर्मबन्धन किया।[136]

प्रस्तुत प्रसग महापुराण मे नही है।

[१२] सर्वार्थसिद्ध

आयु पूर्ण कर वज्रनाभ आदि पाँचो भाई सर्वार्थसिद्ध विमान मे उत्पन्न हुए, वहाँ वे तेतीस सागरोपम तक सुख के सागर मे तैरते रहे।[137]

---

१३४. एव ताभ्या गुरुपु मात्सर्यमुद्वहद्भ्या तथाविधतीव्रामर्पवशान्मिथ्यात्वमुपगम्य स्त्रीत्वमुपचित, स्वल्पोऽपि दोपोऽनालोचिताप्रतिक्रान्तो महानर्थफलो भवति।

—आवश्यक मल० वृ० १६०।१

(ख) ताभ्यामनालोचयद्भ्यामितीर्प्याकृतदुष्कृतम् ।
मायामिथ्यात्वयुक्ताभ्या, कर्म स्त्रीत्वफल कृतम् ॥

—त्रिपष्ठि १।१।६०६

१३५. वहुनाऽपि च साधूना वैयावृत्य वितन्वता।
चक्रवर्तिभोगफल कर्मोपार्जितमात्मन ॥

—त्रिपष्ठि० १।१।६०४

१३६. विश्रामणा महर्षीणा कुर्वाणेन तपोजुषाम्।
सुवाहुना वाहुवल लोकोत्तरमुपार्जितम् ॥

—त्रिपष्ठि १।१।६०५

१३७. ततो पचवि अहाउय पालइत्ता काल काऊण सव्वट्ठ सिद्धिमहाविमाणे तेत्तीस सागरोवमट्ठिइया देवा उववण्णा।

—आवश्यक निर्युक्ति मल० वृ० १६२

[१३] श्री ऋषभदेव

सर्वार्थसिद्ध की आयु समाप्त होने पर सर्वप्रथम वज्रनाभ का जीव च्युत हुआ और वह जम्बूद्वीपस्थ भरतक्षेत्र की इक्ष्वाकुभूमि मे अन्तिम कुलकर "नाभि" की पत्नी मरुदेवी की कुक्षि मे आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी को उत्तराषाढ नक्षत्र के योग मे उत्पन्न हुआ।[१३८] चैत्र कृष्णा अष्टमी

(ख) सलेखनाद्वयपुर मरमेकधीरास,
ते पादपोपगमनानशन प्रपद्य।
सर्वार्थसिद्धिमधिगम्य दिव-
त्रयस्त्रिशाब्ध्यायुप सुरवरा: पडपिह्यभूवन् ॥
—त्रिपष्ठि० १।१।६११

(ग) उपशान्तगुणस्थाने कृतप्राणविमर्जन।
सर्वार्थसिद्धिमासाद्य सम्प्रापत् सोऽहमिन्द्रताम् ॥
—महापुराण ११।११।२३७

(घ) चक्रवर्ती स्वकाल स्वपञ्चभावनक तप।
कृत्वान्ते श्रीप्रभ शैलमारुह्य प्राक्तनै. सह ॥
आराधना तत्र चतुष्प्रकारामाराध्य मासानशनो जगाम।
सर्वार्थसिद्धि स निनाय तत्र काल त्रयस्त्रिशदयार्णवानाम् ॥
—पुराणसार ७८।७६।२।३२

१३८. उववातो सव्वट्ठे सव्वेंमि पढमतो चुतो उसभो।
रिक्खेण असाढाहि असाढवहुले चउत्थीए ॥
—आवश्यक नियुक्ति गा० १८२

(ख) उसभे ण अरहा कोसलिए जे से गिम्हाण चउत्थे मासे, सत्तमे पक्खे, आसाढवहुले, तस्स आसाढवहुलस्स चउत्थी-पक्खेण सव्वट्ठसिद्धाओ महाविमाणाओ तेत्तीस सागरो-मट्ठिईयाओ अणतर चय चइत्ता इहेव जम्बुद्दीवे भारहे वासे इक्खागभूमीए नाभिस्स कुलगरस्स मरुदेवीए भारियाए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि आहारवक्कतीए जाव गब्भताए वक्कन्ते।
—कल्पसूत्र, सू० १६१। पृ० ५६

(ग) आपाढ[illegible] पक्षे, प्रवृत्ते धवलेतरे।
चतु[illegible] [illegible]क्षत्रस्थे निशाकरे ॥

को उत्तराषाढा नक्षत्र के योग मे उनका जन्म हुआ।[139] "श्री ऋषभ" यह नाम रखा गया।

उसके पश्चात् बाहुमुनि का जीव सर्वार्थसिद्ध विमान से च्यवकर पूर्वभव के वैयावृत्य के दिव्य प्रभाव से श्री ऋषभदेव का पुत्र भरत चक्रवर्ती हुआ।[140] सुबाहुमुनि का जीव पूर्वभव मे मुनियो को

प्रपाल्याऽऽयुस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमसम्मितम् ।
जीव श्रीवज्रनाभस्य च्युत्वा सर्वार्थसिद्धित ॥
श्री नाभिपत्न्या उदरे मरुदेव्या अवातरत् ।
मानसात् सरसो हस, इव मन्दाकिनी तटे ॥
—त्रिषष्ठि १।२।२०९–२१०

१३९ चेत्तबहुलट्ठमीए जातो उसभो असाढनक्खते ।
जम्मणमहो य सव्वो नेयव्वो जाव घोसणय ॥
—आवश्यक निर्युक्ति, १८४

(ख) ततो नवसु मासेषु दिनेष्वर्द्धाष्टमेषु च ।
गतेषु चैत्रबहुलाष्टम्यामर्द्धनिशाक्षणे ॥
उच्चस्थेषु ग्रहेष्विन्दावुत्तराषाढया युते ।
सुखेन सुषुवे देवी, पुत्र युगलधर्मिणम् ॥
—त्रिषष्ठि १।२।२६४–२६५

१४० बाहुजीवपीठजीवौ, च्युत्वा सर्वार्थ सिद्धत ।
कुक्षौ सुमङ्गलादेव्या युग्मत्वेनाऽवतेरतु ॥
—त्रिषष्ठि० १।२।८८४

(ख) बाहुणा वेयावच्चकरणेण चक्किभोगा णिव्वत्तिया ।
—आवश्यक मल० वृ० १६२

(ग) बाहुणा वेयावच्चकरणेण चक्किभोगा णिव्वत्तिया ।
—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, १२०

(घ) तत सर्वार्थसिद्धिस्थो योऽसौ व्याघ्रचर सुर ।
सुबाहुरहमिन्द्रोऽत चुत्वा तद्गर्भमावसत् ॥
प्रमोदभरत प्रेमनिर्भरा बन्धुता तदा ।
तमाह्वद्भरत भावि समस्तभरताधिपम् ॥
—महापुराण १२८।१५८।१५।३३६–३३९

विश्रामणा देने से श्रीऋषभ के पुत्र बाहुबली हुए जो विशिष्ट बाहुबल के अधिपति थे।[१४१]

पीठ और महापीठ मुनि के जीवो का ईर्ष्या करने से क्रमश श्री ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी के रूप मे जन्म हुआ।[१४२]

भगवान् श्री ऋषभदेव के विराट् व्यक्तित्व और कृतित्व की झाँकी अगले खण्ड मे प्रस्तुत है। यहाँ तो श्रीऋषभदेव के पूर्वभवो का सक्षिप्त रेखा-चित्र उपस्थित किया गया है जो पतनोत्थान का जीवित भाष्य है। श्रमणसस्कृति का यह उद्घोष रहा है कि जब आत्मा पर-परिणति से हटकर स्व-परिणति को अपनाता है तब शनै शनै शुद्ध बुद्ध निर्मल होता हुआ एक दिन परमात्मा बन जाता है। कर्म-पाश से सदा-सर्वदा के लिए मुक्त होने का नाम ही परमात्म-अवस्था है।[१४३]

इस प्रकार श्रमण सस्कृति ने निजत्व मे ही जिनत्त्व की पावन-प्रतिष्ठा कर जन-जन के अन्तर्मानस मे आशा और उल्लास का संचार किया। प्रसुप्त-देवत्त्व को जगाकर आत्मा से परमात्मा, भक्त से भगवान् और नर से नारायण बनने का पवित्र सदेश दिया।

१४१　त्रिपष्ठि० १।२।८८६—८८८।

(ख)　सुबाहुणा बाहुबल।

—आवश्यक मल० वृ० १६२

(ग)　सुबाहुणा वीसामणाए बाहुबल निव्वतिअ।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति० १२०।१

१४२.　त्रिपष्ठि० १।२।८८४ से ८८६।

(ख)　पच्छिमेहिं दोहि ताए मायाए इत्थिनामगोत्त कम्ममज्जित ति।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति० १२०

१४३.　कर्म-बद्धो भवेज्जीव,
कर्ममुक्तस्तथा जिन.।

ऋषभदेव : एक परिशीलन

द्वितीय खण्ड

परिचयरेखा

●

प्रथम अध्याय

गृहस्थ-जीवन

•

महापुरुषो का देश

भारतवर्ष महापुरुषो का देश है, इस विषय मे ससार का कोई भी देश या राष्ट्र भारतवर्ष की तुलना नही कर सकता। यह अवतारो की जन्मभूमि है, सन्तो की पुण्यभूमि है, वीरो की कर्मभूमि है, और विचारको की प्रचार-भूमि है। यहाँ अनेक नररत्न, समाज-रत्न एव राष्ट्ररत्न पैदा हुए है, जिन्होने मानव मन की सूखी धरणी पर स्नेह की सरस सरिता प्रवाहित की। जन-जीवन मे अभिनव जागृति का सचार किया। जन-मन मे सयम और तप की ज्योति जगाई। अपने पवित्र चरित्र के द्वारा और तप पूत वाणी के द्वारा, कर्त्तव्य मार्ग मे जूझने की अमर प्रेरणा दी।

युग-पुरुष

गगन-मण्डल मे विचरती हुई विद्युत तरंगो को पकड़ कर जैसे बेतार का तार उन विद्युत्तरगो को भाषित रूप देता है, अव्यक्त वाणी को व्यक्त करता है, वैसे ही समाज मे या राष्ट्र मे जो विचार-धाराएँ चलती हैं, उन्हे प्रत्येक विचारक अनुभव तो करता है किन्तु अनुभूति की तीव्रता के अभाव मे अभिव्यक्त नही कर सकता। युग-पुरुष की अनुभूति तीव्र होती है और अभिव्यक्ति भी तीव्र होती है। वह जनता जनार्दन की अव्यक्त विचारधाराओ को बेतार के तार की भाँति मुखरित ही नही करता बल्कि उसे नूतन स्वरूप प्रदान करता है। उनकी विमल-वाणी में युग की समस्याओ का समाधान निहित होता है। उसके कर्म मे युग का कर्म क्रियाशील होता है और उसके चिन्तन मे युग का चिन्तन चमकता है। युग-पुरुष अपने युग का सफल प्रतिनिधित्व करता है। जन-जन के मन का

साधिकार नेतृत्व करता है एव वह युग की जनता को सही दिशा-दर्शन देता है। भूले-भटके जीवन राहियो का पथप्रदर्शन करता है। अत वह समाज रूपी शरीर का मुख भी है और मस्तिष्क भी है।

भगवान् श्री ऋषभदेव ऐसे ही युगपुरुष थे, जिन्होने अपने युग की भोली-भाली जनता को "सत्य, शिव सुन्दरम्" का पाठ पढाया, जनजीवन को नया विचार, नयी वाणी एव नया कर्म प्रदान किया।भोगमार्ग से हटाकर कर्ममार्ग, प्रवृत्तिमार्ग और योगमार्ग पर लगाया। अज्ञानान्धकार को हटाकर ज्ञान का विमल आलोक प्रज्ज्वलित किया। मानव-सस्कृति का नव-निर्माण किया। यही कारण है कि अनन्त-अतीत की धूलि भी उनके जीवन की चमक एव दमक को आच्छादित नही कर सकी।

भारतीय संस्कृति के आद्यनिर्माता

आज मानवसंस्कृति के आद्यनिर्माता महामानव भगवान् श्री ऋषभदेव को कौन नही जानता ? वे वर्तमान अवसर्पिणी काल-चक्र में सर्वप्रथम तीर्थङ्कर हुए है।[1] उन्होने ही सर्वप्रथम पारिवारिक प्रथा, समाजव्यवस्था, शासनपद्धति, समाजनीति और राजनीति की स्थापना की और मानवजाति को एक नया प्रकाश दिया जिसका उल्लेख अगले पृष्ठो मे किया जाएगा।

जन्म से पूर्व

भगवान् श्री ऋषभदेव ऐसे युग मे इस अवनीतल पर आये जब

---

१. (क) एत्थण उसहेणाम अरहा कोसलिए पढमराया, पढमजिणे, पढमकेवली, पढमतित्थयरे, पढम धम्मवर चक्कवट्टी समुप्पज्जित्था।

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति

(ख) उसभे इ वा, पढमराया इ वा, पढमभिक्खाचरे इवा, पढमजिणे इवा, पढमतित्यकरे इ वा।

—कल्पसूत्र० पुण्यविजयजी सू० १६४ पृ० ५७

आर्यावर्त के मानवीय जीवन मे आमूलचूल परिवर्तन हो रहा था। जीवन का ढंग पूरी तरह पलट रहा था। निष्क्रिय-यौगलिक-काल समाप्त होकर कर्मयुग का प्रारम्भ होने जा रहा था। प्रतिपल, प्रतिक्षण मानव की आवश्यकताएँ तो वढ रही थी पर उस युग के जीवन निर्वाह के एक मात्र साधन कल्पवृक्षो की शक्ति क्षीण हो रही थी। साधनो की अल्पता से सघर्ष होने लगा, वाद-विवाद, लूट-खसोट और छीना-झपटी होने लगी। सग्रहवुद्धि पैदा होने लगी। स्नेह, सरलता, सौम्यता, निस्पृहता प्रभृति सद्गुणो मे परिस्थिति की विवशता से परिवर्तन आने लगा। अपराधी मनोभावना के वीज अकुरित होने लगे।

शासन व्यवस्था

विख्यात राजनैतिक विचारक टामस्पेन ने लिखा है, "मानव अपनी बुरी प्रवृत्तियो पर स्वय नियत्रण नही रख सका इसलिए शासन का जन्म हुआ। शासन का कार्य है व्यक्ति की बुरी प्रवृत्तियो पर नियन्त्रण रखना। अच्छी प्रवृत्ति फूल की लता है, फल का वृक्ष है, जिसे बुरी प्रवृत्ति की झाड़ियाँ घेरती है, पनपने नही देती। शासन का काम इन झाड़ियो को काटना है।"[२]

प्रस्तुत सन्दर्भ के प्रकाश मे हम जैन सस्कृति की दृष्टि से देखे तो भी शासन व्यवस्था का मूल अपराध और अव्यवस्था ही है। अपराध और अव्यवस्था पर नियत्रण पाने के हेतु सामूहिक जीवन जीने के लिए मानव विवश हुआ। मानव की अन्त प्रकृति ने उसे प्रेरणा प्रदान की। उस सामूहिक व्यवस्था को 'कुल' कहा गया। कुलो का मुखिया जो प्रकृष्ट प्रतिभा सम्पन्न होता था वह 'कुलकर' कहलाने लगा। वह उन कुलो को सुव्यवस्था करता।[3]

---

२ ज्ञानोदय, वर्ष १७ अङ्क २ अगस्त १९६५, सहचिन्तन,
(कन्हैयालाल मिश्र) पृ० १८४।

३. स्थानाग सूत्रवृत्ति० सू० ७६७, पत्र ५१८–१।

कुलकरो की संख्या

कुलकरो की संख्या के सम्बन्ध मे विभिन्न मत हैं। स्थानाङ्ग[४] समवायांग[५] भगवती, आवश्यकचूर्णि,[६] आवश्यकनिर्युक्ति[७] तथा त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र[८] मे सात कुलकरो के नाम उपलब्ध होते हैं। पउमचरिय,[९] महापुराण[१०] और सिद्धान्त सग्रह[११] मे चौदह के तथा

---

४ स्थानाग सूत्र वृत्ति सू० ७६७ पत्र ५१८–१।

५ समवायांग १५७।

(ख) जम्बुद्दीवे ण भते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए समाए कइ कुलगरा होत्था ? गोयमा ! सत्त।

—भगवती श० ५, उद्दे० ६, सू० ३

६ आवश्यक चूर्णि पत्र १२९।

७. पढमेत्थविमलवाहण, चक्खुम जसम चउत्थमभिचन्दे।
तत्तो य पसेणइए, मरुदेवे चेव नाभी य॥

—आवश्यक नि० मल० वृ० गा० १५२ पृ० १५४

८ त्रिषष्ठि० पर्व० १, स० २, श्लो० १४२–२०६।

९. पउमचरिय उद्दे० ३, श्लो० ५०–५५

(१) सुमति, (२) प्रतिश्रुति, (३) सीमङ्कर, (४) सीमन्धर, (५) क्षेमंकर, (६) क्षेमधर, (७) विमलवाहन, (८) चक्षुष्मान्, (९) यशस्वी, (१०) अभिचन्द्र, (११) चन्द्राभ, (१२) प्रसेनजित्, (१३) मरुदेव, (१४) नाभि।

१० आद्य प्रतिश्रुति. प्रोक्त', द्वितीय: सन्मतिर्मत.।
तृतीय. क्षेमकृन्नाम्ना, चतुर्थ. क्षेमधृन्मनु.॥
सीमकृत्पचमो ज्ञेय., पष्ठ' सीमधृदिष्यते।
ततो विमलवाहाङ्कश् चक्षुष्मानष्टमो मत.।
यशस्वान्नवमस्तस्मान् नाभिचन्द्रोऽप्यनन्तरः॥
चन्द्राभोऽस्मात्परं ज्ञेयो, मरुदेवस्ततः परम्।
प्रसेनजित्पर तस्मा, न्नाभिराजश्चतुर्दश.॥

—महापुराण जिनसेनाचार्य, प्रथम भाग, तृतीय पर्व श्लो० २२९–२३२, पृ० ६६,

११. सिद्धान्त सग्रह पृष्ठ १८

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति[12] मे पन्द्रह के नाम मिलते है। सम्भवत अपेक्षा भेद से इस प्रकार हुआ हो।

कुलकरो को आदिपुराण मे 'मनु' भी कहा है।[13] वैदिक साहित्य मे कुलकरो के स्थान मे 'मनु' शब्द ही व्यवहृत हुआ है। मनुस्मृति मे स्थानाग की तरह सात मनुओ का उल्लेख है[14] तो अन्यत्र चौदह का भी।[15] सक्षेप मे चौदह या पन्द्रह कुलकरो को सात मे अन्तर्निहित किया जा सकता है। चौदह या पन्द्रह कुलकरो का जहाँ उल्लेख है, उसमे प्रथम छ सर्वथा नये हैं और ग्यारहवे कुलकर चन्द्राभ का भी उल्लेख नही है। शेष सात वे ही हैं।

---

१२ तीसे समाए पच्छिमेतिभाए पलिओवमद्ध-
भागावसेसे, एत्थण, इमे पण्णरस कुलगरा
समुप्पज्जित्था त जहा—सुमई, पडिस्सुई,
सीमकरे, सीमधरे, खेमकरे, खेमधरे,
विमलवाहणे, चक्खुम, जसम अभिचन्दे
चदाभे, पसेणई, मरुदेवे, णाभी उसभोत्ति।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति पत्र० १३२

१३. आदि पुराण ३।१५।
(ख) महापुराण ३।२२६। पृ० ६६।

१४ स्वायम्भुवस्यास्य मनो, षड्वंश्या मनवोऽपरे।
सृष्टवन्त. प्रजा स्वा स्वा, महात्मानो महौजस ॥
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च, तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजा, विवस्वत्सुत एव च ॥
स्वायम्भुवाद्या. सप्तैते, मनवो भूरितेजस.।
स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥

—मनुस्मृति, अ० १। श्लो० ६१-६२-६३

१५. (१) स्वायम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) औत्तमि, (४) तापस, (५) रैवत, (६) चाक्षुष, (७) वैवस्वत, (८) सावर्णि, (९) दक्षसावर्णि, (१०) ब्रह्मसावर्णि, (११) धर्मसावर्णि, (१२) रुद्रसावर्णि, (१३) रौच्य देव सावर्णि, (१४) इन्द्र सावर्णि।

—मोन्योर-मोन्योर विलियम संस्कृत-इङ्गलिश डिक्शनरी पृ० ७८४

दण्डनीति

अपराधी मनोवृत्ति जब व्यवस्था का अतिक्रमण करने लगी तब अपराधो के निरोध के लिये कुलकरो ने सर्वप्रथम दण्डनीति[१६] का प्रचलन किया। वह दण्डनीति हाकार, माकार और धिक्कार थी।[१७]

हाकार नीति

सात कुलकरो की दृष्टि से प्रथम कुलकर विमल वाहन के समय हाकार[१८] नीति का प्रचलन हुआ। उस युग का मानव आज के मानव की तरह अमर्यादित व उच्छृंखल नही था। वह स्वभाव से ही संकोची और लज्जाशील था। अपराध करने पर अपराधी को इतना ही कहा जाता—"हा! अर्थात् तुमने यह क्या किया?" यह शब्द-प्रताडना उस युग का महान् दण्ड था। अपराधी पानी-पानी हो जाता।[१९] प्रस्तुत नीति द्वितीय कुलकर "चक्षुष्मान्" के समय तक सफलता के साथ चली।

माकार नीति

जब "हाकार नीति" विफल होने लगी, तब "माकार नीति" का प्रयोग आरम्भ हुआ।[२०] तृतीय और चतुर्थ कुलकर "यशस्वी" और

---

१६. दण्ड. अपराविनामनुशासन तत्र तस्य वा स एव वा नीति. नयो दण्डनीति ।

—स्थानाग वृत्ति, प० ३९९-१

१७. हक्कारे मक्कारे धिक्कारे चेव दण्डनीतीओ ।
वोच्छ तासि विसेस जहक्कम आणुपुव्वीए ॥

—आव० नि० गा० १६४

१८ "ह इत्यधिक्षेपार्थस्तस्य करणं हकार. ।

—स्थानाङ्ग सू० वृत्ति० प० ३९९

१९ तेणं मणुआ हक्कारेणं दडेण हया समाणा लज्जिआ, विलज्जिआ, वेड्डा भीआ तुसिणीआ विणओणया चिट्ठन्ति ।

—जम्बू० कालाधिकार पृ० ७६

२०. मा इत्यस्य निषेधार्थस्य करण अभिधान माकार ।

—स्थानाङ्ग वृत्ति प० ३९९

"अभिचन्द्र" के समय तक लघु अपराध के लिए "हाकार नीति" और गुरुतर अपराध के लिए "माकार नीति" प्रचलित रही। "मत करो" यह निषेधाज्ञा महान् दण्ड समझी जाने लगी।

धिक्कारनीति

मगर जन साधारण की धृष्ठता क्रमश बढती जा रही थी, अत माकारनीति के भी असफल हो जाने पर "धिक्कारनीति" का प्रादुर्भाव हुआ।[21] और यह नीति पाँचवे प्रसेनजित्, छठे मरुदेव तथा सातवे कुलकर नाभि तक चलती रही। इस प्रकार खेद, निपेध और तिरस्कार मृत्युदण्ड से भी अधिक प्रभावशाली थे। क्योकि उस समय का मानव स्वभाव से सरल और मानस से कोमल था।[22] उस समय तक अपराधवृत्ति का विशेप विकास नही हुआ था।

स्वप्न-दर्शन

अन्तिम कुलकर नाभि के समय यौगलिक सभ्यता क्षीण होने लगी, और एक नयी सभ्यता मुस्कुराने लगी। उस सन्धिवेला मे श्री ऋपभदेव सर्वार्थविमान से च्यवकर माता मरुदेवी की कुक्षि मे आये। उनके पिता नाभि थे।[23]

---

२१. धिगधिक्षेपार्थ एव तस्य करण उच्चारण धिक्कार ।

—स्थानाग वृत्ति प० ३६६

२२ तेरण मणुआ पगईउवसन्ता, पगई पयणुकोह-माण—माया—लोहा, मिउ—मद्दवमम्पण्णा, अल्लीणा, भद्दगा, विणीआ, अप्पिच्छा, असणिहिसचया, विडिमन्तरपरिवसणा जहिच्छिअ कामकामिणो ।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार सू० १४

२३ नाभिस्स कुलगरस्स मरुदेवीए भारियाए ।

—कल्पसूत्र पुण्य० सू० १६१ पृ० ५६

(ख) त्रिपष्ठि पर्व १, सर्ग २, श्लो० ६४७ से ६५३ ।

(ग) नाभिस्त्वजनयत्पुत्र, मरुदेव्या महाद्युति. ।
ऋपभं पार्थिवश्रेष्ठ, सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ॥

—वायुमहापुराण पूर्वार्ध ४ अ० ३३

जब बालक गर्भ मे आता है तब गर्भ का माता के मानस पर, और माता के मानस का गर्भ पर प्रभाव पडता है। यही कारण है कि किसी विशिष्ट पुरुष के गर्भ मे आने पर उसकी माता कोई श्रेष्ठ स्वप्न देखती है। भारतीय साहित्य मे स्वप्न-विज्ञान के सम्बन्ध मे विस्तार से निरूपण मिलता है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के गर्भ मे आने पर माता कौशल्या ने चार स्वप्न देखे थे।[२४] कर्मयोगी श्रीकृष्ण के गर्भ मे आने पर देवकी ने सात स्वप्न देखे थे।[२५] महात्मा बुद्ध के

(घ) नाभिस्त्वजनयन् पुत्रं, मरुदेव्या महाद्युतिम् ॥५९॥
ऋषभ पार्थिव श्रेष्ठ, सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे, वीर पुत्रशताग्रज ॥
— ब्रह्माण्ड पुराण, पूर्वार्द्ध, अनुषङ्गपाद श्लो० ५९–६० अध्याय १४

(ङ) नाभिर्मरुदेव्या पुत्रमजनयत् ऋषभनामान ।
—वाराह पुराण अध्याय ७४

(च) नाभे पुत्रश्च ऋषभ ।
—स्कन्ध पुराण, माहेश्वरखण्ड-कौमारखण्ड
श्लो० ५७ अध्याय ३७

(छ) हिमाह्वय तु यद्वर्ष, नाभेरासीन्महात्मन ।
तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो, मेरुदेव्या महाद्युति. ॥
—कूर्मपुराण श्लो० ३७ अध्याय ४१

२४. (क) चतुरो वलदेवाम्वाय' ...... ।
—श्री काललोकप्रकाश, सर्ग ३०, श्लोक ५९ पृ० १९९

(ख) ददर्श सुखसुप्ता च यामिन्या पश्चिमे क्षणे ।
चतुर. सा महास्वप्नान् सूचनान् वलजन्मन ॥
—त्रिषष्ठि० पर्व ४ । सर्ग १, श्लो० १६८

(ग) सेनप्रश्न पृ० ३७९ ।

(घ) जैन रामायण, केशराज जी १६ वीं ढाल के दोहे ।

२५ यामिन्याः पश्चिमे यामे सूचका विष्णुजन्मन ।
देव्या ददृशिरे स्वप्ना सप्तैते सुखसुप्तया ॥
—त्रिषष्ठि० ४।१।२१७

(ख) सेनप्रश्न पृ० ३७९ ।

गर्भ मे आने पर उनकी माता मायादेवी ने एक षडदन्त गज का स्वप्न देखा था।[२६] उसी प्रकार श्री ऋषभदेव के गर्भ मे आने पर माता मरुदेवी ने भी (१) गज, (२) वृषभ, (३) सिंह, (४) लक्ष्मी, (५) पुष्प-माला, (६) चन्द्र, (७) सूर्य (८) ध्वजा, (९) कुम्भ, (१०) पद्मसरोवर, (११) क्षीर-समुद्र, (१२) विमान, (१३) रत्नराशि, (१४) निर्धूम अग्नि ये चौदह महास्वप्न देखे।[२७] दिगम्बराचार्य जिनसेन ने सोलह स्वप्न देखने का उल्लेख किया है।[२८] उपर्युक्त चौदह स्वप्नो मे से ध्वजा को

---

२६ (क) बुद्धचर्या, राहुल सांकृत्यायन पृ० २, प्रथम सस्क०।
(ख) ललित विस्तर, गर्भावक्रान्ति परिवर्तन।

२७ गय वसह सीह अभिसेय, दाम ससि दिणयर झय कुम्भ।
पउमसर सागर विमाण-भवण रयणुच्चय सिहिं च ॥१॥
—कल्पसूत्र प० १४ (पुण्यविजय)

२८ सापश्यत् षोडशस्वप्नान्, इमान् शुभफलोदयान्।
निशायाः पश्चिमे यामे, जिनजन्मानुशंसिनः ॥१०३॥
गजेन्द्रमैन्द्रमामन्द्रबृंहितं त्रिमदस्रुतम्।
ध्वनन्तमिवसासारं, सा ददर्श शरद्घनम् ॥१०४॥
गवेन्द्रं दुन्दुभिस्कन्धं, कुमुदापाण्डुरद्युतिम्।
पीयूषराशिनीकाशं, सापश्यत् मन्द्रनिःस्वनम् ॥१०५॥
मृगेन्द्रमिन्दुसच्छायवपुषं रक्तकन्धरम्।
ज्योत्स्नया सन्ध्यया चैव, घटिताङ्गमिवैक्षत ॥१०६॥
पद्मां पद्ममयोत्तुङ्गविष्टरे सुरवारणैः।
स्नप्या हिरण्मयैः कुम्भैः अदर्शत् स्वामिव श्रियम् ॥१०७॥
दामनी कुसुमामोद, समालग्नमदालिनी।
तज्झङ्कृतैरिवारब्धगाने सानन्दमैक्षत ॥१०८॥
समग्रबिम्बमुज्ज्योत्स्नं, ताराधीशं सतारकम्।
स्मेरं स्वमिव वक्त्राब्जं, समौक्तिकमलोकयत् ॥१०९॥
विधूतध्वान्तमुद्यन्तं, भास्वन्तमुदयाचलात्।
शातकुम्भमयं कुम्भ मिवाद्राक्षीत् स्वमङ्गले ॥११०॥
कुम्भौ हिरण्मयौ पद्मपिहितास्यौ व्यलोकत।
स्तनकुम्भाविवात्मीयौ, समासक्तकराम्बुजौ ॥१११॥

उन्होने स्थान नही दिया है। शेष तेरह स्वप्न वे ही है। उनके अतिरिक्त, (१) मत्स्ययुगल (२) सिंहासन, (३) नागेन्द्र का भवन—ये तीन स्वप्न अधिक हैं। श्वेताम्बरमान्यतानुसार नरक से आने वाले तीर्थङ्करो की माता स्वप्न मे भवन देखती है और स्वर्ग से आने वालो की माता विमान।[२९] उन्होने विमान और भवन के स्वप्न को वैकल्पिक माना है।

झषौ सरसि सम्फुल्लकुमुदोत्पलपङ्कजे।
सापश्यन्नयनायाम, दर्शयन्ताविवात्मन ॥११२॥
तरत्सरोजकिञ्जल्कपिञ्जरोदकमैक्षत।
सुवर्णद्रवसम्पूर्णमिव दिव्य सरोवरम् ॥११३॥
क्षुभ्यन्तमब्धिमुद्वेल चलत्कल्लोलकाहलम्।
सादर्शच्छीकरैर्मोक्तुम्, अट्टहासमिवोद्यतम् ॥११४॥
सैंहमासनमुत्तुङ्ग, स्फुरन्मणिहिरण्मयम्।
सापश्यन्मेरुश्रृङ्गस्य, वैदग्धी दधदूर्जिताम् ॥११५॥
नाकालय व्यलोकिष्ट, परार्ध्यमणिभासुरम्।
स्वसूनो प्रसवागार,मिव देवैरुपाहृतम् ॥११६॥
फणीन्द्रभवन भूमिम्, उद्भिद्योद्गतमैक्षत।
प्राग्दृष्टस्वर्विमानेन, स्पर्द्धां कर्त्तुमिवोद्यतम् ॥११७॥
रत्नाना राशिमुत्सर्पदंशुपल्लविताम्बरम्।
सा निदध्यौ धरादेव्या, निधानमिव दर्शितम् ॥११८॥
ज्वलद्भासुरनिर्धूमवपुष विषमार्चिषम्।
प्रतापमिव पुत्रस्य, मूर्त्तिरूप न्यचायत ॥११९॥
न्यशामयच्च तुङ्गाङ्ग पुङ्गव रुक्मसच्छविम्।
प्रविशन्त स्ववक्त्राब्ज स्वप्नान्ते पीनकन्धरम् ॥१२०॥

—महापुराण जिनसेनाचार्य, प० १२, श्लो० १०३ से १२०
पृ० २५९–२६०

२९ देवलोकाद्योऽवतरति तन्माता विमान पश्यति, यस्तु नरकात् तन्माता भवनमिति।

—भगवती शतक ११, उद्दे० ११, अभयदेववृत्ति

जन्म

भगवान् श्री ऋषभदेव का जन्म जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, कल्पसूत्र, आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र, प्रभृति श्वेताम्बरग्रन्थानुसार चैत्र कृष्णा अष्टमी को हुआ[30] और दिगम्बराचार्य जिनसेन के अनुसार नवमी[31] को। संभव है अष्टमी की मध्यरात्रि होने से श्वेताम्बर परम्परा ने अष्टमी लिखा हो और प्रातःकाल जन्म मानने से दिगम्बर परम्परा ने नवमी लिखा हो। इस

---

३० उसभे अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्सणं चित्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइन्दियाणं जाव आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आरोग्गा आरोग्गं पयाया।

—कल्पसूत्र, पुण्य० सू० १९३ पृ०

(ख) चेत्तबहुलट्ठमीए जातो उसभो असाढनक्खत्ते।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १८४

(ग) ' ' चेतबहुलट्ठमीए उत्तरासाढाणक्खत्तेणं जाव अरोगा अरोग पयाता।

—आवश्यक चूर्णि, जिनदासमहत्तर पृ० १३५

(घ) त्रिषष्ठि० सर्ग २, पर्व १ श्लो० पृ० २६४।

(ङ) कल्पलता—समय सुन्दर पृ० १६७।

(च) कल्पद्रुम कलिका—लक्ष्मीवल्लभ पृ० १४२।

(छ) कल्पसूत्र कल्पार्थबोधिनी, केशरगणी पृ० १४४।

(ज) कल्पसूत्र, कल्पसुबोधिका, पृ० ४८५।

३१ अथातो नवमासानाम्, अत्यये सुषुवे विभुम्।
देवी देवीभिरुक्ताभि, र्यथास्वं परिवारिता॥
प्राचीव बन्धुमब्जानां, सा लेभे भास्वरं सुतम्।
चैत्रे मास्यसिते पक्षे, नवम्यामुदये रवे॥
विश्वे ब्रह्ममहायोगे, जगतामेकवल्लभम्।
भासमानं त्रिभिर्बोधैः शिशुमप्यशिशुं गुणैः॥

—महापुराण जिनसेन स० १३, श्लो० १-३ पृ० २८३

भेद का प्रमुख कारण हमारी दृष्टि से उदय और अस्त तिथि की पृथक्-पृथक् मान्यता हो सकती है।

नाम

मा मरुदेवी ने जो चौदह महास्वप्न देखे थे। उनमे सर्व प्रथम वृषभ का स्वप्न था[32] और जन्म के पश्चात् भी शिशु के उरु-स्थल पर वृषभ का लाछन था अत उनका नाम "ऋषभ" रखा गया।[33] भागवत्

---

३२ (क) सा उसहगयसीहमाईए चोद्दस सुमिणे पासित्ता पडिबुद्धा।
—आवश्यक नि० मल० वृत्ति० प० १६३।१

(ख) णवर पढमं उसभ मुहे अतितं पासति सेसाउ गय।
—कल्पसूत्र पुण्य० सू० १६२ पृ० ५६

(ग) स्वर्गावतरणे दृष्ट, स्वप्नेऽस्य वृषभो यत।
जनन्या तदय देवै, आहूतो वृषभाख्यया॥
—महापुराण, जिनसेन, चतुर्दश पर्व श्लो० १६२

(घ) त्रिषष्टि १।२।२१३। प० ४०।१, पृ० ३१६

३३ (क) तत्र भगवतो नाम निबन्धन चतुर्विंशतिस्तवे वक्ष्यति उरुसुउसभलछणमुसभ सुमिणमि तेण उसभजिणो।
—आवश्यक मल० वृ० पृ० १६२।१

(ख) ऊरुसु उसभलछण उसभो सुमिणमि तेण कारणेण उसभोत्ति णाम कय। —आवश्यक चूर्णि जिनदास पृ० १५१

(ग) ऊरुप्रदेशे ऋषभो, लाञ्छन यज्जगत्पते।
ऋषभ प्रथमं यच्च, स्वप्ने मात्रा निरीक्षित॥
तत्तस्य ऋषभ इति, नामोत्सवपुर सरम्।
तौ मातापितरौ हृष्टौ, विदधाते शुभे दिने॥
—त्रिषष्ठि० १।२।६४८–६४६।

(घ) पूर्वं स्वप्नसमये वृषभस्य [illegible], पुत्रस्योभयोर्जङ्घयोः
आवर्तभ्रमणावलोका [illegible] स्यलञ्छन [illegible]
"ऋषभ." इतिनाम [illegible]
—क० [illegible] १४२ कल्पद्रु

(ङ) कल्पसूत्र कल्पा[illegible]

के मंतव्यानुसार उनके सुन्दर शरीर, विपुल कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश और पराक्रम प्रभृति सद्‌गुणों के कारण महाराजा नाभि ने उनका नाम ऋषभ दिया।[३४]

भगवती,[३५] जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति,[३६] समवायाङ्ग,[३७] चतुर्विंशतिस्तव,[३८] कल्पसूत्र,[३९] नन्दीसूत्र,[४०] निशीथचूर्णि[४१] आदि आगमसाहित्य

---

३४ तस्य ह वा इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन चौजसा बलेन, श्रिया, यशसा, वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ॥

—श्रीमद्भागवत ५।४।२। प्र० ख० गोरखपुर सम्क० ३, पृ० ५५६

३५ उसभस्स अरहओ कोसलियस्स।

—भगवती शत० २०, उद्दे० ८

३६ उसभेण अरहा कोसलिए।

—जम्बू० सू० ४६, पृ० ८६ अमोलक०

३७ उसभस्स पढमभिक्खा।

—समवायाग

(ख) उसभेण लोगणाहेण।

—समवायाग

३८. उसभमजियं च वन्दे।

—चतुर्विंशतिस्तव सूत्र

३९ उसभेण अरहा कोसलिए।

—कल्पसूत्र सू० १९१ पृ० ५५

४० उसभ अजियं संभवमभिनन्दण-सुमइ-सुप्पभ-सुपासं।

—नन्दीसूत्र गाथा १८

४१. पुरिमा उसभसामिणो सिस्सा।

—निशीथ चूर्णि, तृतीय भाग पृ० १५३

(ख) पुरिमो रिसभो, पच्छिमो वद्धमाणो।

—निशीथ चूर्णि द्वि० भाग, पृ० १३६ सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

मे यही नाम आया है। उनके नाम के साथ "नाथ" और "देव" शब्द कब जुडे, यह कहना कठिन है, तथापि यह स्पष्ट है कि ये शब्द उनके प्रति भक्ति और श्रद्धा के सूचक है।

दिगम्बरपरम्परा मे ऋषभदेव के स्थान पर "वृषभदेव" भी प्रसिद्ध है। वृषभदेव जगत् भर मे ज्येष्ठ है और जगत् का हित करने वाले धर्मरूपी अमृत की वर्षा करेंगे, एतदर्थ ही इन्द्र ने उनका नाम वृषभदेव रखा।[४२] वृष कहते है श्रेष्ठ को। भगवान् श्रेष्ठ धर्म से शोभायमान है, इसलिए भी इन्द्र ने उन्हे 'वृषभ स्वामी' के नाम से पुकारा।[४३]

श्री ऋषभदेव धर्म और कर्म के आद्यनिर्माता थे, एतदर्थ जैन इतिहासकारो ने उनका एक नाम "आदिनाथ" भी लिखा है और यह नाम अधिक जन-मन प्रिय भी रहा है।

श्री ऋषभदेव प्रजा के पालक थे, एतदर्थ आचार्य जिनसेन[४४] व आचार्य समन्तभद्र[४५] ने उनका एक गुण-निष्पन्न नाम

---

४२ वृषभोऽय जगज्ज्येष्ठो, वर्षिष्यति जगद्धितम।
धर्मामृतमितीन्द्रास्तम्, अकार्षुर्वृषभाह्वयम्॥
—महापुराण, जिनसेन पर्व १४, श्लो० १६०, पृ० ३१६

४३ वृषो हि भगवान्धर्म, तेन यद्भाति तीर्थकृत्।
ततोऽय वृषभस्वामीत्याह्वास्तैनं पुरन्दर॥
—महापुराण, जिनसेन पर्व १४, श्लो० १६१, पृ० ३१६

४४. आषाढमासबहुलप्रतिपद्दिवसे कृती।
कृत्वा कृतयुगारम्भ प्राजापत्यमुपेयिवान्॥
—महापुराण १६०।१६।३६३

४५ प्रजापतिर्य प्रथम जिजीविषु,
शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजा।
प्रबुद्धतत्त्व. पुनरद्भुतोदयो.
ममत्वतो निर्विविदे विदाम्वर॥
—बृहत्स्वयम्भू स्तोत्र

'प्रजापति' भी लिखा है। इनके अतिरिक्त उनके काश्यप,[४६] विधाता, विश्वकर्मा और स्रष्टा[४७] आदि अनेक नाम भी प्रसिद्ध हैं।

आदिपुरुष

भगवान् श्री ऋषभदेव जैनसंस्कृति की दृष्टि से प्रथम तीर्थङ्कर हैं। श्रीमद्भागवत की दृष्टि से वे विष्णु के अवतार हैं। भगवान श्री विष्णु महाराजा नाभि का प्रिय करने के लिये उनके अन्तःपुर की महारानी मरुदेवी के गर्भ में आये। उन्होंने इस पवित्र शरीर का अवतार वातरशना श्रमण ऋषियों के धर्मों को प्रकट करने की इच्छा से ग्रहण किया।[४८]

शिव महापुराण के अनुसार भगवान् श्री ऋषभदेव शिव के अट्ठाईस योगावतारों में आठवें योगावतार हैं।[४९] उन्होंने ऋषभदेव के

---

४६ कास—उच्छू, तस्य विकारो—कास्य—रस, सो जस्स पाणं सो कासवो—उसभस्सामी।

— दशवैकालिक – अगस्त्यसिंह चूर्णि

(ख) काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनात्।

— महापुराण प० १६, श्लो० २६६ पृ० ३७०

४७ विधाता विश्वकर्मा च, स्रष्टा चेत्यादिनामभिः।
प्रजास्तं व्याहरन्ति स्म जगतां पतिमच्युतम्॥

—महापुराण, आचार्य जिनसेन १६।२६७।३७०

४८ प्रगादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया
तदवरोधायने मरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितुकामो,
वातरशनानां श्रमणानां ऋषीणाम्
ऊर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तन्वावततार॥

—श्रीमद्भागवत पञ्चम स्कन्ध

४९ शिव पुराण, वायुसंहिता उत्तरखण्ड अ० ९, श्लो० ३, पृ० १३७९
वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

रूप मे अवतार ग्रहण किया।[५०] प्रभास पुराण मे भी ऐसा ही उल्लेख है।[५१]

डाक्टर राजकुमार जैन ने "वृषभदेव तथा शिव सम्बन्धी प्राच्य मान्यताएँ"[५२] शीर्षक लेख मे वेद, उपनिषद्, भागवत प्रभृति ग्रन्थो के शताधिक प्रमाण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ऋषभदेव और शिव एक ही है, पृथक्-पृथक् नही। श्रमण और ब्राह्मण दोनो परम्पराओ के वे आदि पुरुष है।

वंश-उत्पत्ति

जब ऋषभदेव एक वर्ष से कुछ कम के थे उस समय वे पिता की गोद मे बैठे हुए क्रीडा कर रहे थे। शक्रेन्द्र हाथ मे इक्षु लेकर आया।[५३] ऋषभदेव ने उसे लेने के लिए हाथ आगे बढाया। बालक का इक्षु के प्रति आकर्षण देखकर शक्र ने इस वश को 'इक्ष्वाकु वश' नाम से

---

५० इत्थप्रभाव ऋषभोऽवतार शकरस्य मे।
मता गतिर्दीनबन्धुर्नवम कथितस्तव ॥
ऋषभस्य चरित्र हि परम पावन महत्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्य श्रोतव्य च प्रयत्नत ॥
—शिवपुराण ४।४७-४८

५१ कैलाशे विमले रम्ये, वृषभोऽय जिनेश्वर।
चकार स्वावतारं च, सर्वज्ञ सर्वग शिव. ॥
—प्रभासपुराण ४९

५२. मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ६०९।

५३ (क) देसूणग च वरिस सक्कागमण च वसठवणा य।
—आवश्यक नि० गा० १८५ मल० वृ० पृ० १६२

(ख) इतो य णाभिकुलकरो उसभसामिणा अकवरगतेण एव च विहरति, सक्को य महप्पमाणाओ इक्खुलट्ठीओ गहाय उवगतो जयावेई।
—आवश्यक चूर्णि पृ० १५२

अभिहित किया। आचार्यों ने व्युत्पत्ति करते हुए कहा है—इक्षु+आकु (भक्षणार्थे) इक्ष्वाकु।"[५४]

विवाह परम्परा

सामाजिक रीतिरिवाज, जिसमे विवाहप्रथा भी सम्मिलित है, कोई शाश्वत सिद्धान्त नही, किन्तु उन मे युग के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। भाई-बहिन का विवाह इस युग मे बडे से बडा पाप माना जाता है, किन्तु उस युग मे यह एक सामान्य प्रथा थी। यौगलिक परम्परा मे भाई और भगिनी ही पति और पत्नी के रूप मे परिवर्तित हो जाया करते थे। सुनन्दा के भ्राता की अकाल मे मृत्यु हो जाने से[५५]

---

५४ (क) सक्को वसट्ठवणे इक्खु अगू तेण हुन्ति इक्खागा।
—आवश्यक नियुक्ति गा० १८६।

(ख) भगवता लट्ठीसु दिट्ठी पाडिता, ताहे सक्केण भणियं—किं भगवं! इक्खुअकु। अकु भक्खणे, ताहे सामिणा पसत्थो लक्खणधरो अलंकितविभूसितो दाहिणहत्थो पसारितो, अतीव तम्मि हरिसो जातो भगवन्तस्स, तएण सक्कस्स देविदस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिते—जम्हा ण तित्थगरो इक्खुं अभिलसति तम्हा इक्खागुवंसो भवतु, एवं सक्को वंसं ठवेऊण गतो, अन्नेऽवि तं कालं खत्तिया इक्खु भुन्जन्ति तेण इक्खागवंसा जाता इति उवरिं आहारद्दारे निरूतमि "आसी य इक्खुभोती इक्खागा तेण खत्तिया होंति" भणिहिति।
—आवश्यक चूर्णि, पृ० १५२

(ग) त्रिषष्ठि शलाका० १।२।६५४ से ६५६।

(घ) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका पृ० ४८७।

(ङ) कल्पसूत्र, कल्पलता, समयसुन्दर जी, पृ० १६८।

(च) „ कल्पार्थबोधिनीवृत्ति० कनक० पृ० १६४।

(छ) „ कल्पद्रुमकलिका पृ० १४३।

(ज) „ मणिसागर पृ० २६६

५५ पढमो अकालमच्चू तहिं, तालफलेण दारओ उ हओ।
कन्ना य कुलगरेहि य, सिट्ठे गहिया उसभपत्ती॥
—आव० नि० गा० १९०, म० वृ० १९३

ऋषभदेव ने सुनन्दा व सहजात सुमङ्गला के साथ पाणिग्रहण कर नई व्यवस्था का सूत्रपात किया।[५६] सुमङ्गला ने भरत और ब्राह्मी को और सुनन्दा ने बाहुबली और सुन्दरी को जन्म दिया।[५७] इसके पश्चात् सुमगला के क्रमश अट्ठानवे पुत्र और हुए।[५८] दिगम्बर परम्परा निन्यानवे पुत्र मानती है।[५९]

५६　(क)　भोगसमत्थ नाउ, वरकम्म तस्स कासि देविन्दो।
　　　　दोण्ह वरमहिलाण, वहुकम्म कासि देवीतो॥
　　　　—आव० नि० गा० १९१ प० १९३
　　(ख)　त्रिषष्ठि १।२।८८१।
५७　देवी सुमङ्गलाए, भरहो वम्भी य मिहुणग जाय।
　　देवीए सुनन्दाए, वाहुवली सुन्दरी चेव॥
　　—आवश्यक मूलभाष्य
　　(ख)　छप्पुव्वसयसहस्सा, पुव्वि जायस्स जिणवरिंदस्स।
　　　　तो भरहवभिसुन्दरि, वाहुवली चेव जायाइ॥
　　　　—आव० नि० गा० १९२ म० वृ० १९४।१
　　(ग)　आवश्यक चूर्णि पृ० १५३।
　　(घ)　सुनन्दा सुन्दरी पुत्री, पुत्र वाहुवलीशिनम्।
　　　　लब्ध्वा रुचि परा भेजे, प्राचीवार्क्क सह त्विषा॥
　　　　—महा० १६।८।३४६
　　(ङ)　तदा वाहुजीवो भरत, पीठजीवो ब्राह्मी इति सुमङ्गलाया मिथुनक जात। एव सुवाहुजीवो वाहुवली, महापीठजीव. सुन्दरी इति मिथुनक सुनन्दाया जातं।
　　　　—कल्पलता—समय सुन्दर
　　(च)　कल्प० कल्पार्थवोधिनी पृ० १४४-१४५।
　　(छ)　,, कल्पद्रुम कलिका, लक्ष्मी० पृ० १४३।
५८　अउणापन्नं जुयले
　　पुत्ताण सुमङ्गला पुणो पसवे।
　　—आव० नि० गा० १९३ मल० वृ० १९४।१
　　(ख)　आवश्यक चूर्णि पृ० १५३।
　　(ग)　एव पुनरपि सुमङ्गलाया एकोनपञ्चाशत् युगलानि पुत्ररूपाणि जातानि।　—कल्पलता—समयसुन्दर
५९.　ज्येकान्नशत पुत्रा, वभूवुर्वृषभेशिन।
　　भरतस्यानुजन्मानश् चरमाङ्गा महौजस॥

विधवा विवाह नहीं

कितने ही आधुनिक विचारक कल्पना के गगन मे विहरण करते हुए 'सुनन्दा' को विधवा मानकर श्री ऋषभदेव के उसके साथ किए गए विवाह को विधवा विवाह कहते है। उन विचारको को यह स्मरण रखना चाहिए कि आचार्य भद्रबाहु,[६०] आचार्य जिनदासगणि महत्तर,[६१] आचार्य मलयगिरि,[६२] आचार्य हेमचन्द्र,[६३] श्री समय

ततो ब्राह्मी यशस्वत्या, ब्रह्मा समुदपादयत्।
कलामिवापराशाया, ज्योत्स्नपक्षोऽमला विधो ॥

—महापुराण जिन० १६।४-५ पृ० ३८६

६० आवश्यक निर्युक्ति, आचार्य भद्रबाहु गा० १९० ।

६१ ततो य तलरुक्खाओ तलफल पक्क समाणं वातेण आहत तस्स दारगस्स उवरि पडित तेण सो अकाले चेव जीवितातो ववरोवितो ।

—आवश्यक चूर्णि, जिनदास महत्तर पृ० १५२

६२. भगवतो देशोनवर्षकाल एव किञ्चिन्मिथुनक सञ्जातापत्य सत् तदपत्यमिथुनक तालवृक्षस्याधो विमुच्य रिरमया कदलीगृहादि क्रीडा गृहमगमत्, तस्माच्च तालवृक्षात् पवनप्रेरित पक्व तालफलमपतत्, तेन दारकोऽकाल एव जीविताद् व्यपरोपित ।

—आवश्यक मल० वृत्ति० पृ० १९३

६३ अन्येद्यु क्रीडया क्रीडद् बालभावानुरूपया ।
मिथो मिथुनक किञ्चित्, तले तालतरोरगात् ॥
तदैव दैवदुर्योगात्, तन्मध्यान्नरमूर्द्धनि ।
तडिद्दण्ड इवैरण्डेऽपतत् तालफल महत् ॥
प्रहृत काकतालीयन्यायेन स तु मूर्द्धनि ।
विपन्नो दारकस्तत्र, प्रथमेनापमृत्युना ॥

—त्रिषष्टि १।२।७३४ से ७३७

सुन्दर,[६४] उपाध्याय विनय विजय,[६५] केशरमुनि,[६६] श्री लक्ष्मीवल्लभ,[६७] श्री मणिसागर[६८] प्रभृति विज्ञोने प्रस्तुत घटना का उट्टङ्कन करते हुए उस युगल को बालक और बालिका बताया है, न कि युवा-युवती। और जब वे बालक थे तो उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी भ्रातृ-भगिनी रूप मे ही था, पति-पत्नी के रूप मे नही, अत स्पष्ट है कि श्री ऋषभदेव ने सुनन्दा के साथ विवाह किया, वह विधवा विवाह नही था। जब उनका पति-पत्नीरूप सम्बन्ध ही नही हुआ तो वह विधवा कैसे कही जा सकती है ?

आचार्य जिनसेन ने महापुराण मे प्रस्तुत घटना का उल्लेख नही किया है और न ऋषभमहजात सुमंगला से ही पाणिग्रहण करवाया है। श्री ऋषभ की अनुमति लेकर नाभि ने ऋषभ के विवाह हेतु दो सुयोग्य सुशील कन्याओ की याचना की।[६९] फलस्वरूप कच्छ महाकच्छ की दो बहिने, जो सुन्दर और यौवनवती थी, जिनका नाम "यशस्वी और सुनन्दा" था, उनके साथ नाभि ने ऋषभ का विवाह किया।[७०] भागवत के अनुसार गृहस्थ धर्म की शिक्षा देने के लिए देवराज इन्द्र की दी हुई उनकी कन्या जयन्ती से ऋषभदेव ने विवाह

---

६४ कल्पसूत्र, कल्पलता, व्या० ७, समयसुन्दर पृ० १६८।

६५ कल्पसुबोधिका विनय० पृ० ४८७ सारा० न०।

६६ कल्पसूत्र कल्पार्थबोधिनी पृ० १४४।

६७. कल्पसूत्र कल्पद्रुम कलिका लक्ष्मी० पृ० १४२।

६८. कल्पसूत्र पृ० २६७।

६९ सुरेन्द्रानुमतात्कन्ये सुशीले चारुलक्षणे।
सत्यौ सुरुचिराकारे वरयामास नाभिराट्॥
—महा० पर्व० १५, श्लो० ६६, पृ० ३३०

७०. तन्व्यौ कच्छमहाकच्छजाम्यौ सौम्ये पतिंवरे।
यशस्वतीसुनन्दाख्ये स एव पर्यणीनयत्॥
—महा० १५।७०। पृ० ३३१

किया।[71] संभव है सुनन्दा का ही भागवतकार ने जयन्ती नाम दिया हो। क्योंकि श्वेताम्बर ग्रन्थानुसार वह अरण्य में एकाकी प्राप्त हुई थी। उसकी सौन्दर्य-सुषमा अत्यधिक होने के कारण वह वनदेवी के सदृश प्रतीत हो रही थी।[72] उसके सौन्दर्य तथा सद्गुणों के कारण ही भागवतकार ने उसे इन्द्र की पुत्री समझा है। और पुत्री समझकर वर्णन किया है। श्वेताम्बर ग्रन्थों की तरह[73] भागवतकार ने भी उसके सौ सन्तान बताई हैं।[74]

भरत और बाहुबली का विवाह

श्री ऋषभदेव ने यौगलिक धर्म को मिटाने के लिये जब भरत और बाहुबली युवा हुए तब भरतसहजात ब्राह्मी का पाणि-ग्रहण बाहुबली से करवाया और बाहुबली सहजात सुन्दरी का पाणिग्रहण भरत से करवाया।[75] इन विवाहों का अनुकरण करके

---

७१ ' गृहमेधिना धर्माननुशिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभय लक्षण कर्म समाम्नायाम्नानमानमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानाना शत जनयामास।

—भागवत ५।४।८।५५७

७२ सा य अतीव उक्किट्ठसरीरा देवकण्णाविव तेसु य वणतरेसु जह वण-देवता तहा विहरति, न च एक्कलिय दट्ठु वेति पुरिसा साहन्ति, ताहे नाभी त दारिय गहाय भणति—उसभस्स भारिया भविस्सति त्ति।

—आवश्यकचूर्णि जिनदास पृ० १५२-५३

७३. तए ण सुमङ्गलाए बाहू य पीढो य अणुत्तरोहितो नउज्जण मिहुणय जात, ' ' " ' 'ततेण सा सुमङ्गलादेवी अन्नाणि एगूणपन्न पुत्तजुयल-गाणि पसवति।

—आवश्यक चूर्णि, जिनदास १५३

७४. भागवत ५।४।८।५५७।

७५ युग्मिधर्मनिषेधाय भरताय ददौ प्रभु।
सोदर्या बाहुबलिन सुन्दरी गुणसुन्दरीम्॥
भरतस्य च सोदर्या ददौ ब्राह्मी जगत्प्रभु।
भूपाय बाहुबलिने तदादि जनतान्वगा॥

—श्री कालकोर प्रकाश सर्ग० ३२, श्लो० ४७-४८

जनता ने भी भिन्न गोत्र मे समुत्पन्न कन्याओ को उनके माता-पिता आदि अभिभावको द्वारा दान मे प्राप्त कर पाणिग्रहण करना शुरू किया।[७६] इस प्रकार एक नवीन परम्परा प्रारम्भ हुई।

आचार्य जिनसेन ने ब्राह्मी सुन्दरी के विवाह का वर्णन नहीं किया है। प्रज्ञाचक्षु प० सुखलाल जी भी उन्हे अविवाहित मानते है+ पर उन्होने प्राचीन श्वेताम्बर ग्रन्थो के कोई भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये।

ऋषभदेव का काल भारी उथलपुथल का काल था। उस समय प्राकृतिक परिवर्तनो के साथ मानवीय व्यवस्था मे भी आमूल परिवर्त्तन हो रहा था। परिस्थितियाँ पलट रही थी। परिवार प्रथा

(ख) दत्ती व दाणमुसभ दिन्त
दट्ठु जणमिवि पवत्त।

—आव० निर्यु० गा० २२४

(ग) भगवता युगलधर्म्मव्यवच्छेदाय भरतेन सह जाता ब्राह्मी वाहुवलिने दत्ता, वाहुवलिना सहजाता सुन्दरी भरताय।

—आव० मल० वृत्ति पृ० २००

(घ) भरतस्य सार्थेप्रसूता ब्राह्मी सा वाहुवलाय परिणायिता, वाहुवलसार्थे जाता सुन्दरी सा भरतस्यार्पिता। भरतेन स्त्रीरत्नार्थं रक्षिता, एव युगलधर्मो निवारित श्री ऋषभदेवेन।

—कल्पद्रुम कलिका, लक्ष्मी० पृ० १४४।१

७६. (क) भिन्नगोत्रदिका कन्यां दत्ता पित्रादिभिर्मुदा।
विधिनोपायत प्राय· प्रावर्तत तथा तत·॥

—श्री काललोक प्रकाश स० ३२, श्लो० ८९,

(ख) इति दृष्ट्वा तत आरभ्य प्रायो लोकेऽपि कन्या पित्रादिना दत्ता सती परिणीयते इति प्रवृत्तम्।

—आव० मू० मल० वृत्ति० पृ० २००

+ दर्शन अने चिन्तन, भा० १ 'भगवान् ऋषभदेव अने तेमनो परिवार' पृ० २३६
जैन प्रकाश, ८ फरवरी १९६९, जैन परम्परा के आदर्श

का प्रारम्भ हो रहा था और संग्रह वृत्ति का सूत्रपात हो चला था। ऐसी स्थिति में अपराधवृत्ति का विकास होना भी स्वाभाविक था और वह हो रहा था।

सर्वप्रथम राजा

पूर्व में यह बताया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव के पिता 'नाभि' अन्तिम कुलकर थे। जब उनके नेतृत्व में ही धिक्कारनीति का उल्लंघन होने लगा, प्राचीन मर्यादाएँ विच्छिन्न होने लगीं, तब उस अव्यवस्था में यौगलिक घबराकर श्री ऋषभदेव के पास पहुँचे और उन्हें सारी स्थिति का परिज्ञान कराया।[७७] ऋषभदेव ने कहा—"जो मर्यादाओं का अतिक्रमण कर रहे हैं उन्हें दण्ड मिलना चाहिए और यह व्यवस्था राजा ही कर सकता है, क्योंकि शक्ति के सारे स्रोत उसमें केन्द्रित होते हैं।" समय को परखने वाले नाभि ने यौगलिकों की विनम्र प्रार्थना पर ऋषभदेव का राज्याभिषेक कर "राजा" घोषित किया।[७८] ऋषभदेव राजा बने और शेष जनता प्रजा। इस प्रकार पूर्व चली आ रही "कुलकर" व्यवस्था का अन्त हुआ और एक नवीन अध्याय का प्रारम्भ हुआ।

राज्याभिषेक के समय युगलसमूह कमलपत्रों में पानी लाकर ऋषभदेव के पद-पद्मों का सिंचन करने लगे। उनके विनीत स्वभाव

---

७७ नीतीण अइक्कमणं निवेयणं उसभसामिस्स
—आव० नि० गा० १६३ म० वृ० प० १६४

(ख) आवश्यक चूर्णि—पृ० १५३

७८ राया करेइ दंडं सिट्ठे ते बेंति अम्हवि स होउ।
मग्गह य कुलगरं, सो य बेइ उसभो य भे राया॥
—आव० नि० गा० १६४ म० वृ० १६४

(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १५३-१५४

(ग) विदितानुरागमापौरप्रकृतिजनपदो राजा।
नाभिरात्मज समयसेतु रक्षायामभिषिच्य......॥
—श्री मद्भागवत ५।४।५ पृ० ५५६

को लक्ष्य मे रखकर नगरी का नाम "विनीता" रखा[७९], उसका अपर नाम अयोध्या भी है।[८०]

उस प्रान्त का नाम विनीत भूमि[८१] और "इक्खाग भूमि"[८२] पड़ा। कुछ समय के पश्चात् प्रस्तुत प्रान्त मध्यदेश के नाम से प्रख्यात हुआ।[८३]

राज्य-व्यवस्था का सूत्रपात

इसी प्रकार श्री ऋषभदेव ने मानव जाति को विनाश के गर्त से बचाने के लिए और राज्य की सुव्यवस्था हेतु आरक्षक दल की स्थापना की, जिसके अधिकारी 'उग्र' कहलाये। मन्त्रिमंडल बनाया जिसके अधिकार 'भोग' नाम से प्रसिद्ध हुए। सम्राट् के समीपस्थ जन, जो परामर्श प्रदाता थे वे, 'राजन्य' के नाम से विख्यात हुए और अन्य राजकर्मचारी 'क्षत्रिय' नाम से पहचाने गये।[८४]

---

७९ भिसिणीपत्तोहियरे उदय घेत्तु छुहन्ति पाएसु।
नाहु विणीया पुरिसा, विणीयनयरी अह निविट्ठा॥
—आव० नि० गा० १९६ म० वृ० १९७।१

(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १५४।

८०. मध्येऽर्धभरतस्याशु चक्रे वैश्रवणः पुरम्।
साकेत नामना ख्यात विनीतजनतावृतम्॥
—पुराणसार १८।३।३६

८१. आवश्यक सूत्र मल० वृत्ति० प० १५७-२।

८२. (क) आवश्यक सूत्र म० वृत्ति० प० १६३।
(ख) आव० नि० हारिभद्रीय टीका प० १२०-२।

८३. आवश्यक निर्युक्ति हारि० टी० गा० १५१ प० १०९-२।

८४. (क) उग्गा भोगा रायण्ण खत्तिया सगहो भवे चउहा।
आरक्खगुरुवयसा सेसा जे खत्तिया ते उ॥
—आव० नि० गा० १९८, म० वृ० प० १९५।१

(ख) एवं तस्स अभिसित्तस्स चउव्विहो रायसंगहो भवति, त जहा—
उग्गा भोगा राइन्ना खत्तिया। उग्गा जे आरक्खियपुरिसा,

दुष्टों के दमन एवं प्रजा तथा राज्य के संरक्षणार्थ चार प्रकार की सेना व सेनापतियों की व्यवस्था की।[८४] साम, दाम, दण्ड और भेद

नेमि उग्गा दडणीती ने उग्गा, भोगाणाम जे पितित्थाणिया गामिस्स, राइन्ना नाम जे सामिस्स समव्वया, अवसेसा खत्तिया।

—आवश्यक चूर्णि, जिनदास पृ० १५४

(ग) तदोग्र-भोग-राजन्य –क्षत्रभेदैश्चतुर्विधान्।
जनानामूत्रयद् विश्वस्थितिनाटकसूत्रभृन् ॥
आरक्षपुरुषा उग्रा, उग्रदण्डाधिकारिण।
भोगा मन्त्र्यादयो भर्तुस्त्रायस्त्रिंशा हरेरिव ॥
राजन्या जज्ञिरे ते ये, समानवयस प्रभो।
अवशेषास्तु पुरुषा, बभूवु क्षत्रिया इति ॥

—त्रिषष्ठि १।२।९७४ से ९७६

८५. ओंकार इव मन्त्राणा, नृपाणा प्रथमो नृप।
अपत्यानि निजानीव, पालयामास स प्रजा ॥
असाधुशासने साधुपालने कृतकर्मण.।
प्रत्यङ्गानि स्वकानीव, मन्त्रिणो विदधे विभु ॥
चौर्यादिरक्षणे दक्षानारक्षानप्यसूत्रयत्।
सु॒ामेव लोकपालान्, राजा वृषभलाञ्छन ॥
अनीकस्याङ्गमुत्कृष्टमुत्तमाङ्गं तनोरिव।
राज्यस्थित्यै राजहस्ती, हस्तिन स समग्रहीत् ॥
आदित्यतुरगस्पर्द्धयैवात्युद्धुरकन्धरान्।
वन्धुरान् धारयामास, तुरगान् वृषभध्वज ॥
सुश्लिष्टकाष्ठघटितान्, स्यन्दनान् नाभिनन्दन।
विमानानीव भूस्थानि, सूत्रयामास च स्वयम् ॥
सुपरीक्षितसत्त्वाना, पत्तीना स परिग्रहम्।
नाभिसूनुस्तदा चक्रे, चक्रवर्तिभवे यथा ॥
नव्यराज्यप्रासादस्य, स्तम्भानिव बलीयस।
अनीकपतीनस्य, स्थापयामास नाभिभू ॥

—त्रिषष्ठि० १।२।९२५ से ९३२ प० ९३–९४

नीति का प्रचलन किया।[८६] चार प्रकार की दण्ड-व्यवस्था निर्मित की। (१) परिभाष, (२) मण्डलबन्ध, (३) चारक, (४) छविच्छेद।[८७]

परिभाष

कुछ समय के लिये अपराधी व्यक्ति को आक्रोशपूर्ण शब्दो मे नजरबन्द रहने आदि का दण्ड देना।

मण्डलबन्ध

सीमित क्षेत्र मे रहने का दण्ड देना।

चारक

बन्दीगृह मे बन्द करने का दण्ड देना।

छविच्छेद

करादि अंगोपाङ्गो के छेदन का दण्ड देना।

ये चार नीतियाँ कब चली, इसमें विद्वानो के विभिन्न मत है। कुछ विज्ञो का मन्तव्य है कि प्रथम दो नीतियाँ ऋषभ के समय चली[८८] और दो भरत के समय। आचार्य अभयदेव के मन्तव्यानुसार ये चारो नीतियाँ भरत के समय चली।[८९] आचार्य भद्रबाहु और आचार्य

---

८६. स्वामी समादामभेददण्डोपायचतुष्टयम्।
जगद्व्यवस्थानगरीचतुष्पथमकल्पयत् ॥
—त्रिषष्टि० १।२।९५९

(ख) णीतीओ उसभसामिम्मि चेव उप्पन्नाओ।
—आवश्यक चूर्णि पृ० १५६

८७ स्थानाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७।

८८ आद्यद्वयमृषभकाले अन्ये तु भरतकाले इत्यन्ये।
—स्थानाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७

८९ परिभासणा उ पढमा, मण्डलबन्धम्मि होई बीया तु।
चारग छविछेदावि भरहस्स चउव्विहा नीई ॥
—स्थानाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७

मलय गिरी के अभितानुसार वन्ध (बेड़ी का प्रयोग) और घात (डण्डे का प्रयोग) ऋषभनाथ के समय प्रारम्भ हो गये थे।[९०] और मृत्यु दण्ड का आरम्भ भरत के समय हुआ।[९१] जिनसेनाचार्य के अनुसार वधवन्धन आदि शारीरिक दण्ड भरत के समय चले।[९२]

खाद्यसमस्या का समाधान

कन्द, मूल, पत्र, पुष्प और फल ये ऋषभदेव के पूर्ववर्ती मानवों का आहार था।[९३] किन्तु जनसंख्या की अभिवृद्धि होने पर कन्द मूल

(ग) परिहासणा उ पटमा, मंडलिबंधो उ होइ बीया उ।
चारगछविच्छेयाई भरहस्स चउव्विहा नीती ॥
—आवश्यक भाष्य गा० ३

९०. निगडाइजमो बन्धो, घातो दंडादितालणया।
—आवश्यक निर्युक्ति गा० २१७

(ग) बन्धो निगडादिभिर्यम — नयमन, घातो दण्डादिभिस्ताडना, एतेऽपि अर्थशास्त्रबन्धघातान्तकाले यथायोग प्रवृत्ता।
—आव० नि० मल० वृत्ति प० १९६–२

९१. मारणया जीवबहो जम्मा नागाइयाण पूगातो।
—आव० नि० गा० २१८

(ग) मारणं जीववधो-जीवस्य जीविताद् व्यपरोपणं, तच्च भरतेश्वरकाले समुत्पन्नं।
—आव० नि० म० वृ० प० १९६।२

९२. शरीरदण्डनञ्चैव वधबन्धादिलक्षणम्।
नृणां प्रबलदोषाणां भरतेन नियोजितम् ॥
—महापुराण—तृतीय पर्व० श्लो० २१६—पृ० ६५

९३ आसी य कन्दहारा मूलाहारा य पत्तहारा य।
पुप्फफलभोइणोऽवि य जइया किर कुलगरो उसभो ॥
—आव० नि० गा० २०३

(ग) आव० मलभाष्य गा० ४ आवश्यक चूर्णि० प० १६०

(ग) आवश्यक चूर्णि-जिनदास० पृ० १५४

पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होने से मानव ने अन्नादि का उपयोग प्रारम्भ किया। किन्तु पकाने के साधन का उस समय ज्ञान न होने से कच्चे अन्न का उपयोग आरम्भ हुआ। आगे चलकर कच्चा अन्न दुष्पाच्य होने लगा तो लोग पुन श्री ऋषभदेव के पास पहुँचे और उनसे अपनी समस्या का समाधान मांगा। श्री ऋषभदेव ने हाथ से मलकर खाने की सलाह दी। कालक्रम से जब वह भी दुष्पच हो गया तो पानी से भिगोकर और मुट्ठी व बगल मे रखकर गर्म कर खाने की राय दी।[९४] उससे भी अजीर्ण की व्याधि समाप्त नही हुई। श्री ऋषभदेव अग्नि के सम्बन्ध मे जानते थे पर वह काल एकान्त स्निग्ध था, अग्नि उत्पन्न नही हो सकती थी। अग्नि उत्पत्ति के लिए एकान्त स्निग्ध और एकान्त रुक्ष दोनो ही काल अनुपयुक्त होते है।[९५] समय के कदम आगे बढे। जब काल स्निग्ध-रुक्ष हुआ तब लकडियो को घिसकर अग्नि पैदा की और पात्र निर्माण कर तथा पाक-विद्या सिखाकर खाद्य-समस्या का समाधान किया।[९६] सभवत इसी कारण अथर्ववेद ने

---

९४ आमीय पाणिघसी तिम्मिय तदुलपवालपुडभोई।
हत्थयलपुडाहारा जइया किल कुलगरो उसभो॥
घसेऊण तिम्मण घसणतिम्मणपवालपुडभोई।
घसणतिम्मपवाले हत्थउडे कक्खसेए य॥

—आव० नि० गा० २०६–२०७

(ख) आव० मू० हारिभद्रीयावृत्ति० मूल भाष्य ८ प० १३११

९५ (क) तदा कालस्य एकान्तस्निग्धतया सत्यपि यत्ने वह्न्युत्पादाभावात्, भगवांस्तु विजानाति न एकान्तस्निग्धरूक्षयो कालयोर्वह्न्युत्पाद. किन्तु विमात्रया स्निग्धरूक्षकाले, ततो नादिष्टवानिति।

—आव० मल० वृ० प० १९७१

(ख) आवश्यक चूर्णि, जिनदास० पृ० १५४–१५५

९६ पक्खेवडहणमोसहि कहण निग्गमण हत्थिसीसम्मि।
पयणारभपवित्ती ताहे कासीय ते मणुया॥

—आव० नि० गा० २०६

ऋषभसूक्त में भगवान् श्री ऋषभदेव की अन्य विशेषणों के साथ "जात वेदस्" [अग्नि] के रूप में भी स्तुति की है।[९७]

भगवान् श्री ऋषभदेव सर्वप्रथम वैज्ञानिक और समाजशास्त्री थे। उन्होंने समाज की रचना की। भागवत में आता है, कि एक साल वृष्टि न होने से लोग भूखे मरने लगे, सर्वत्र "त्राहि-त्राहि" मच गई, तब ऋषभदेव ने आत्मशक्ति से पानी बरसाया और उस भयंकर अकाल-जन्य संकट को दूर किया।+ प्रस्तुत घटना इस बात को प्रकट करती है कि उस समय खाद्य वस्तुओं की कमी आ चुकी थी, जनता पर अभाव की काली घटाएँ घिरी हुई थी, उसे उन्होंने दूर किया। वर्षा बरसाने के कारण वे वर्षा के देवता के रूप में भी प्रसिद्ध हैं।

कला का अध्ययन

सम्राट् श्री ऋषभदेव ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को बहत्तर कलाओं[९८] का और कनिष्ठ पुत्र बाहुबली को प्राणी-लक्षणों का ज्ञान कराया।[९९] पुत्री ब्राह्मी को अठारह लिपियों का अध्ययन

---

९७ अथर्ववेद ६।४।३।

\+ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ५, अ० ४, कण्डिका ३।

९८. देखिए परिशिष्ट।

९९ भरहस्स रूवकम्म, नराइलक्खणमहोइयं बलिणो।

—आवश्यक निर्युक्ति० गा० २१३

(ख) भरहस्स चित्तकम्मं उवदिट्ठं, बाहुबलिस्स लक्खणं थीपुरिसमादीणं, माणं ओमाणं पडिमाणं एवं तदा पवत्तं।

—आवश्यक चूर्णि० जिन० पृ० १५६

(ग) द्वासप्ततिकलाकाण्डं, भरतं सोऽध्यजीगपत्।
[illegible] ज्येष्ठाय पुत्राय [illegible] नयादिव ॥
भरतोऽपि स्वसोदर्यानन्यानितरानपि।
सम्यगध्यापयत् [illegible], विद्या हि [illegible] ॥
नाभेयो बाहुबलिने [illegible]।
लक्षणानि च [illegible] ॥

—त्रिषष्टि १।२।९६० से ९६३

६

कराया[100] और सुन्दरी को गणित विद्या का परिज्ञान कराया।[101] व्यवहारसाधन-हेतु मान [माप], उन्मान [तोला, मासा, आदि वजन]

(घ) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति।

(ङ) कल्पसूत्र सुबोधिनी टीका पृ० ४६६ सारा० नवाव०

१००. लेहं लिवीविहाणं जिणेण बंभीए दाहिणकरेणं।

—आव० नि० गा० २१२

(ख) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति, भाष्य० गा० ६, प० १३२।

(ग) विशेषावश्यक भाष्य० वृत्ति० १३२।

(घ) अष्टादश लिपीर्ब्राह्म्या अपसव्येन पाणिना।

—त्रिषष्टि० १।२।९६३

(ङ) बंभीए दाहिणहत्थेण लेहो दाइतो।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १५६

(च) कल्पसूत्र, सुबोधिका टीका० साराभाई पृ० ४६६।

(छ) ऋषभदेव ने ही सम्भवत. लिपि-विद्या के लिए लिपिकौशल का उद्भावन किया। ऋषभदेव ने ही सम्भवत ब्रह्म-विद्या की शिक्षा के लिए उपयोगी ब्राह्मी लिपि का प्रचार किया था।

—हिन्दी विश्व-कोष श्री नगेन्द्रनाथ वसु, प्र० भा० पृ० ६४

१०१ गणियं संखाणं सुन्दरीए वामेण उवइट्ठं।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० २१२

(ख) सुन्दरीए वामहत्थेण गणितं।

—आवश्यकचूर्णि पृ० १५६

(ग) विशेषावश्यक भाष्य वृत्ति० १३२।

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० १३२।

(ङ) दर्शयामास सव्येन सुन्दर्या गणितं पुन।

—त्रिषष्टि० १।२।९६३

(च) विभु करद्वयेनाभ्या लिखन्नक्षरमालिकाम्।
उपादिशल्लिपिं सन्ख्यास्थानं चाङ्कैरनुक्रमात्॥

—महापुराण १६।१०४।३५५

अवमान [गज, फुट, इंच] व प्रतिमान [छटांक, सेर, मन, आदि] सिखाये।[102] मणि आदि पिरोने की कला भी बताई।[103]

इस प्रकार सम्राट् श्री ऋषभदेव ने प्रजा के हित के लिए, अभ्युदय के लिए पुरुषों को बहत्तर कलाएँ, स्त्रियों को चौसठ कलाएँ और सौ शिल्पों का परिज्ञान कराया।[104] असि, मषि, और कृषि [सुरक्षा, व्यापार, उत्पादन] की व्यवस्था की।[105] अश्व, हस्ती, गायें, आदि

---

१०२ माणुम्माणवमाणपमाणगणिमाइ वत्थूण।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० २१३

१०३ मणियाई दोराइसु पोता तह सागरमि वहणाइ।
ववहारो लेहवण कज्जपरिच्छेयणत्थ वा॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० २१४

(ख) आवश्यक सूत्र हारिभद्रीयावृत्ति मूल भाष्य गा० ११ प० १३२

१०४ रज्जवासमज्झे वसमाणे लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरि कलाओ चोवट्ठि महिलागुणे सिप्पसय च कम्माणं तिन्नि वि पयाहियाए उवदिसइ।

—कल्पसूत्र, सू० १९५। पृ० ५७, पुण्यविजय स०

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सू० ३६, पृ० ७७ अमो० स०।

(ग) एतच्च सर्वं सावद्यमपि लोकानुकम्पया।
स्वामी प्रवर्तयामास, जानन् कर्तव्यमात्मन॥

—त्रिषष्टि १।२।९७१

१०५ असिर्मषि कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च।
कर्माणीमानि षोढा स्यु. प्रजाजीवनहेतव.॥
तत्र वृत्ति प्रजाना स भगवान् मतिकौशलात्।
उपादिक्षत् सरागो हि स तदासीज्जगद्गुरु॥
तत्रासिकर्म सेवाया मषिर्लिपिविधौ स्मृता।
कृषिर्भूकर्षणे प्रोक्ता विद्या शास्त्रोपजीवने॥
वाणिज्य वणिजा कर्म, शिल्प स्यात् करकौशलम्।
तच्च चित्रकलापत्रच्छेदादि बहुधा स्मृतम्॥

—महापुराण १७९ से १८२, पर्व १६ पृ० ३६२

पशुओ का उपयोग प्रारम्भ किया।[१०६] जीवनोपयोगी प्रवृत्तियो का विकास कर जीवन को सरस, शिष्ट और व्यवहार योग्य बनाया।[१०७]

वर्णव्यवस्था

यौगलिको के समय मे वर्ण-व्यवस्था नही थी। सम्राट् श्री ऋषभदेव ने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णो की स्थापना की।[१०८] यह वर्णन आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र-प्रभृति श्वेताम्बर ग्रन्थो मे स्पष्ट रूप से नही है। परवर्ती विज्ञो ने उस पर

(ख) पजापतिर्य. प्रथम जिजीविषु ।
शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजा ॥
—बृहत्स्वयम्भू स्तोत्र, समन्तभद्राचार्य

१०६ आसा हत्थी गावो गहिआइ रज्जसगहनिमित्त ।
घित्तूण एवमाई चउव्विह संगह कुणइ ॥
—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति गा० २०१ पृ० १२८

१०७ कलाद्युपायेन प्राप्तमुखवृत्तिकस्य चौर्यादिव्यसनासक्तिरपि न स्यात्, कर्माणि च कृषिवाणिज्यादीनि जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नानि, त्रीण्येतानि प्रजाया हितकराणि निर्वाहाभ्युदयहेतुत्वात्
—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति-वृत्ति, २ वक्षस्कार

(ख) पहुणा उ देसियाइ सव्वकलासिप्पकम्माइ
—आवश्यक निर्युक्ति० गा० २२६

(ग) अन्यदा सुखमासीन पुरु नाभिप्रचोदिता ॥
उपतस्यु प्रजा सर्वा जीविकोपायमीप्सव ॥
कि नाथ करवामेति स्थिता वीक्ष्यानुकम्पया ॥
प्रजाभ्यो दर्शयामास कर्मशिल्पकलागुणान् ॥
—पुराणसार १५-१६।३।२६

१०८. उत्पादितास्त्रयो वर्णा तदा तेनादिवेधसा ।
क्षत्रिया. वणिज. शूद्रा क्षतत्राणादिभिर्गुणै ॥
—महापुराण १८।१८।३६२

अवश्य कुछ लिखा है,[109] पर दिगम्बराचार्य जिनसेन की तरह विशद रूप से नहीं। यहाँ यह स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है कि वर्ण-व्यवस्था की संस्थापना वृत्ति और आजीविका को व्यवस्थित रूप देने के लिए थी, न कि ऊँचता व नीचता की दृष्टि से।

मनुष्य जाति एक है। केवल आजीविका के भेद से वह चार प्रकार की हो गई है—व्रतसंस्कार से ब्राह्मण, शस्त्रधारण से क्षत्रिय, न्यायपूर्ण धनार्जन से वैश्य और सेवावृत्ति से शूद्र।[110] कार्य से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होते हैं।[111]

आचार्य जिनसेन के मन्तव्यानुसार सम्राट् श्री ऋषभदेव ने स्वयं अपनी भुजाओं से शस्त्र धारण कर मानवों को यह शिक्षा प्रदान की कि आततायियों से निर्बल मानवों की रक्षा करना शक्तिसम्पन्न व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है। श्री ऋषभदेव के प्रस्तुत आह्वान से कितने ही व्यक्तियों ने यह कार्य स्वीकार किया। वे क्षत्रिय नाम से पहचाने गये।[112]

---

१०९ अथवा ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रभेदात् तत्र-'ब्राह्मणा ब्रह्मचर्येण, क्षत्रिया: शस्त्रपाणय:, कृषिकर्मकरा वैश्या: शूद्रा: प्रेषणकारका:।'
—कल्पलता–समयसुन्दर गणी पृ० १९९

(ख) पउमचरियं-विमलसूरि उ० ३ गा० १११–११६

(ग) पश्चाच्चतुर्वर्णसंस्थापनं कृतम्
—कल्पद्रुम कलिका० लक्ष्मी० पृ० १४४

११० मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा ।
वृत्तिभेदाहिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥
ब्राह्मणा व्रतसंस्कारात् क्षत्रियाः शस्त्रधारणात् ।
वणिजोऽर्थार्जनान्न्यायात् शूद्रा न्यग्वृत्तिसंश्रयात् ॥
—महापुराण श्लोक ४५–४६ पर्व ३८ पृ० २४३ द्वि० भा०

१११. कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइस्सो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥
—उत्तराध्ययन २५।३३

११२ स्वदोर्भ्यां धारयन् शस्त्रं क्षत्रियानसृजद् विभुः ।
क्षतत्राणे नियुक्ता हि क्षत्रियाः शस्त्रपाणयः ॥
—महापुराण १६।२४३

श्री ऋषभदेव ने दूर दूर तक के प्रदेशो की जघा बल से पदयात्रा कर जन-जन के मन मे यह विचारज्योति प्रज्वलित की कि मनुष्य को सतत गतिमान् रहना चाहिए, एक स्थान से द्वितीय स्थान पर वस्तुओ का आयात-निर्यात कर प्रजा के जीवन मे सुख का संचार करना चाहिए। जो व्यक्ति प्रस्तुत कार्य के लिए सन्नद्ध हुए, वे वैश्य की सज्ञा से अभिहित किये गये।[११३]

श्री ऋषभदेव ने मानवों को यह प्रेरणा प्रदान की कि कर्म-युग मे एक दूसरे के सहयोग के बिना कार्य नही हो सकता। अत ऐसे सेवा-निष्ठ व्यक्तियो की आवश्यकता है—जो बिना किसी भेदभाव के सेवा कर सके। जो व्यक्ति सेवा के लिए तैयार हुए उनको श्री ऋषभदेव ने शूद्र कहा।[११४]

इस प्रकर शस्त्र धारण कर आजीविका करने वाले क्षत्रिय हुए, खेती और पशु पालन के द्वारा जीविका करने वाले वैश्य कहलाये और सेवा शुश्रूषा करने वाले शूद्र कहलाये।[११५]

ब्राह्मण वर्ण की स्थापना सम्राट् भरत ने की।[११६] स्थापना का

---

११३ ऊरुभ्या दर्शयन् यात्राम् अस्राक्षीद् वणिज प्रभु ।
जलस्थलादियात्राभि तद्वृत्तिर्वार्त्तया यत ॥
—महापुराण २४४।१६।३६८

११४. न्यग्वृत्तिनियतान् शूद्रान् पद्भ्यामेवासृजन् सुधी ।
वर्णोत्तमेषु शुश्रूषा तद्वृत्तिर्नैकधा स्मृता ॥
—महापुराण २४५।१६।३६८

११५ क्षत्रिया शस्त्रजीवित्व अनुभूय तदाभवन् ।
वैश्याश्च कृषिवाणिज्यपाशुपाल्योपजीविता ॥
—महापुराण १८४।१६।३६२

११६ ..... ताहे भरहो रज्जं ओयवेत्ता ते य भाउए पव्वइए णाऊण अद्धितीए भणति—कि मम इयाणि भोगेहि ? अद्धिति करेति, कि ताए पीवराएवि सिरीए ? जा सज्जणा ण पेच्छति (गाथा) जदि भातरो मे इच्छन्ति तो भोगे देमि। भगव च आगतो, ताहे भाउए भोगेहि निमन्तेति, ते ण इच्छन्ति वन अगिलु। ताहे चिन्तेति एतेसि

पास जाते है और पुन राज्य ग्रहण करने के लिए अभ्यर्थना करते है किन्तु त्यक्त राज्य को वे वमन के समान जानकर पुन ग्रहण नही करते। तब सम्राट् भरत ने भ्राताओ को भोजन कराने हेतु पाँच सौ शकट भोजन मगवाया और उन्हे भोजन ग्रहण करने के लिए निमन्त्रित किया। पर भगवान् श्री ऋषभदेव ने कहा—आधाकर्मी, राज्यपिण्ड आदि आहार श्रमणो के लिए त्याज्य है। शक्रेन्द्र के निर्देशानुसार वह

प्रतिदिन मदीय भोक्तव्य कृष्यादि च न कार्यं २ स्वाध्याय-परैरासितव्य, ३ भुक्ते च मदीयगृहद्वारासन्नव्यवस्थितैर्वक्तव्यम 'जितो भवान् वर्द्धते भय तस्मान्मा हन मा हनेति' ते तथैव कृतवन्त ।

—आवश्यक मल० वृत्ति० प० २३५।१

(ग) बन्धूना गृह्णता राज्यमेतेषा किं कृत मया ?
अनारतमतृप्तेन भस्मकामयिनेव हा ! ॥
अन्येभ्योऽपि ददानोऽस्मि, लक्ष्मी भोगफलामिमाम् ।
तच्च मे भस्मनि हुतमिव मूढस्य निष्फलम् ॥
काकोऽप्याहूय काकेभ्यो, दत्वाऽन्नाद्युपजीवति ।
ततोऽपि हीनस्तदह, भोगान् भुञ्जे विना ह्यमून् ॥
दीयमानान् यदि पुनर्भोगान् भूयोऽपि मद्गृहे ।
आददीरन्नमी भिक्षा, मासक्षपणिका इव ॥
एवमालोच्य भरत पादमूले जगद्गुरो ।
भ्रातृन् निमन्त्रयामास भोगाय रचिताञ्जलि ॥
प्रभुरप्यादिदेशैवमृज्वाशय ! विशाम्पते !
भ्रातरस्ते महासत्त्वा प्रतिज्ञातमहाव्रता ॥
ससारासारता ज्ञात्वा परित्यक्तपूर्विण ।
न खलु प्रतिगृह्णन्ति भोगान् भूयोऽपि वान्तवत् ॥
× × × ×
एव विचिन्त्य शकटानै पञ्चभिरुच्चकै ।
आनाय्याऽऽहारमनुजान् न्यमन्त्रयत् स पूर्ववत् ॥
स्वामी भूयोऽप्युवाचैवमथादि भरतेश्वर ।
आधाकर्माऽऽहृत जातु यतीनां न हि कल्पते ॥

भोजन विशिष्ट श्रावकों को प्रदान किया और प्रतिदिन उन्हें भरत के भोजनालय मे ही भोजनहेतु निमन्त्रण दिया गया, और उन्हें यह आदेश दिया गया कि सासारिक प्रवृत्तियों का परित्याग कर स्वाध्याय ध्यान आदि मे तल्लीन रहे तथा मुझे यह उपदेश देते रहे कि "जितो भवान्, वर्धते भय, तस्मात् मा हन माहन" आप जीते जा रहे है, भय बढ रहा है एतदर्थ आप किसी का हनन न करें। उन श्रद्धालु-श्रावकों ने भरत के आदेश एव निर्देशानुसार प्रस्तुत कार्य स्वीकार किया। सम्राट् भरत ने उनके स्वाध्यायहेतु आर्य वेदो का निर्माण किया।+

जब भोजनलुब्धक श्रावकों की सख्या दिन दूनी और रात चौगुनी बढने लगी, तब सम्राट् भरत ने सच्चे श्रावकों की परीक्षा की, और जो उस परीक्षण प्रस्तर पर खरे उतरे उन्हें सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के प्रतीक रूप मे तीन रेखाओं से चिह्नित कर दिया गया।[117] माहण का उपदेश देने से वे ब्राह्मण कहलाये,[118] और वे रेखाए आगे चलकर यज्ञोपवीत के रूप मे प्रचलित हो गई।

भरतोऽथ समाहूय, श्रावकानभ्यधादिदम्।
गृहे मदीये भोक्तव्य युष्माभि प्रतिवासरम्॥
कृष्यादि न विधातव्य किन्तु स्वाध्यायतत्परै।
अपूर्वज्ञानग्रहण कुर्वाणै स्थेयमन्वहम्॥
भुक्त्वा च मेऽन्तिकगतै पठनीयमिद सदा।
जितो भवान् वर्धते भीस्तस्मान्मा हन मा हन॥
—त्रिषष्टि० १।६।१६० से २२६

\+ "वेदे कारितवन्त" आर्यान् वेदान् कृतवांश्च भरत एव, तत्स्वाध्याय-निमित्तमिति।
—आवश्यकनिर्युक्ति गा० ३६६ की मलयगिरिवृत्ति पृ० २३६

११७ ज्ञानदर्शनचारित्रलिङ्ग रेखात्रय नृप।
वैकक्ष्यमिव काकिण्या विदधे शुद्धिलक्षणम्॥
—त्रिषष्टि १।६।२४१
(ख) आवश्यक चूर्णि० पृ० २१८।

११८. क्रमेण माहनास्ते तु, ब्राह्मणा इति विश्रुता।
काकिणीरत्नरेखास्तु, प्रापुर्यज्ञोपवीतताम्॥
—त्रिषष्टि १।६।२४८

महापुराण के अनुसार सम्राट् भरत षट्खण्ड पर दिग्विजय प्राप्त कर और अपार धन लेकर जब अयोध्या लौटे तो उनके मानस मे यह सकल्प उत्पन्न हुआ कि इस विराट् धन का त्याग कहाँ करना चाहिए[११९] इसका पात्र कौन व्यक्ति हो सकता है ? प्रतिभामूर्ति भरत ने शीघ्र ही निर्णय किया कि ऐसे विलक्षण व्यक्तियो को चुनना चाहिए, जो तीनो वर्णो को चिन्तन-मनन का आलोक प्रदान कर सके।

सम्राट् भरत ने एक विराट् उत्सव का आयोजन किया। उसमे नागरिको को निमन्त्रित किया। विज्ञो की परीक्षा के लिए महल के मार्ग मे हरी घास फल फूल लगा दिये।[१२०] जो व्रतरहित थे वे उस पर होकर महल मे पहुँच गये और जो व्रती थे वे वही पर स्थित हो गये।[१२१] सम्राट् ने महल मे न आने का कारण पूछा तो उन्होने बताया कि देव, हमने सुना है कि हरे अकुर आदि मे अनन्त निगोदिया जीव रहते है, जो नेत्रो से भी निहारे नही जा सकते। यदि हम आपके पास प्रस्तुत मार्ग से आते है तो जो शोभा के लिए नाना प्रकार के सचित्त फल-फूल और अकुर बिछाये गये है उन्हे हमे रौंदना

११९　भरतो भारत वर्ष निर्जित्य सह पार्थिवै ।
पष्ट्या वर्षसहस्रैस्तु दिशा निववृते जयात ॥
कृतकृत्यस्य तस्यान्तश्चिन्तेयमुदपद्यत ।
परार्थे सम्पदास्माकी सोपयोगा कथ भवेत् ॥

—महापुराण ४-५।३८।२४० द्वि० भा०

१२०　हरितैरङ्कुरै पुष्पै फलैश्चाकीर्णमङ्गणम् ।
सम्राडचीकरत्तेषा परीक्षायै स्ववेश्मनि ॥

—महापुराण ११।३८।२४० द्वि० भा०

१२१.　तेष्वव्रता विना सङ्गात् प्राविशन् नृपमन्दिरम् ।
तानेकत समुत्सार्य शेषानाह्वययत् प्रभु ॥

—महापुराण १२।३८।२४० द्वि० भा०

पड़ता है तथा बहुत से हरितकाय जीवों की हत्या होती है।[122] सम्राट् ने अन्य मार्ग से उनको अन्दर बुलवाया[123] और उनकी दया वृत्ति से प्रभावित होकर उन्हे ब्राह्मण की सज्ञा दी और दान, मान आदि सत्कार से सम्मानित किया।[124]

वर्णोत्पत्ति के सम्बन्ध मे ईश्वरकर्तृत्व की मान्यता के कारण वैदिक साहित्य मे खासी अच्छी चर्चा है। उस पर विस्तार से विश्लेषण करना, यहाँ अपेक्षित नही है। सक्षेप मे—पुरुष सूक्त मे एक सवाद है और वह सवाद कृष्ण, शुक्लयजु, ऋक् और अथर्व इन चारो वेदो की सहिताओ मे प्राप्त होता है।

प्रश्न है—ऋषियो ने जिस पुरुष का विधान किया उसे कितने प्रकारो से कल्पित किया ? उसका मुख क्या हुआ ? उसके बाहु कौन बनाये गये ? उसके (जाघ) उरु कौन हुए ? और उसके कौन पैर कहे जाते है ?[125]

उत्तर है :—ब्राह्मण उसका मुख था, राजन्यक्षत्रिय उसका बाहु, वैश्य उसका उरु, और शूद्र उसके पैर हुए।[126]

---

१२२ सन्त्येवानन्तशो जीवा हरितेष्वङ्कुरादिषु।
निगोता इति सार्वज्ञ देवास्माभिः श्रुतं वचः॥
तस्मान्नास्माभिराक्रान्तम् अद्यत्वे त्वद्गृहाङ्गणम्।
कृतोपहारमार्द्रार्द्रैः फलपुष्पाङ्कुरादिभिः॥

१२३. कृतानुबन्धना भूयश्चक्रिणः किल तेऽन्तिकम्।
प्रासुकेन पथाऽन्येन भेजुः क्रान्त्वा नृपाङ्गणम्॥

—महापुराण १५।३८।२४१

१२४ इति तद्वचनात् सर्वान् सोऽभिनन्द्य दृढव्रतान्।
पूजयामास लक्ष्मीवान्, दानमानादिसत्कृतैः॥

—महापुराण २०।३८।२४१

१२५ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य, कौ बाहू, का [वा] ऊरू, पादा [उ] उच्येते ?

—ऋग्वेद संहिता १०।९०, ११–१२

१२६ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

—ऋग्वेद संहिता—१०।९०।१२।

यह एक लाक्षणिक वर्णन है। पर पीछे के आचार्य लाक्षणिकता को विस्मृत कर शब्दो से चिपट गये और उन्होने कहा—ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओ मे क्षत्रिय, उरुओ से वैश्य और पैरो से शूद्र उत्पन्न हुए। एतदर्थ ब्राह्मण को मुखज, क्षत्रिय को वाहुज वैश्य को उरुज और परिचारक को पादज लिखा है।[१२७]

वैदिक साहित्य मे अनेक स्थलो पर भगवान् श्री ऋषभदेव को "ब्रह्मा" कहा है। सभवत प्रस्तुत सूक्त का सम्बन्ध भगवान् श्री ऋषभदेव से ही हो।

जैन सस्कृति की तरह वैदिक संस्कृति भी वर्णोत्पत्ति के सम्बन्ध मे विभिन्न मत रखती है। साथ ही जैन सस्कृति की तरह वह भी प्रारम्भ मे वर्ण-व्यवस्था जन्म से न मानकर कर्म से मानती थी।[१२८]

(ख) शुक्ल यजुर्वेद सहिता। ३१।१०-११

(ग) किं वाहू किमुरु ?

—अथर्ववेद सहिता १६।६।६

(घ) विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखवाहूरुपादजा ।
वैराजात् पुरुपाज्जाता य आत्माचारलक्षणा ॥

—भागवत ११।१७।१३। द्वि० भा० पृ० ८०६

१२७. वक्त्राद् भुजाभ्यामूरुभ्या पद्भ्या चैवाथ जज्ञिरे।
सृजत प्रजापतेर्लोकानिति धर्मविदो विदु. ॥
मुखजा ब्राह्मणास्तात वाहुजा क्षत्रिया स्मृता ।
ऊरुजा धनिनो राजन् पादजा परिचारका ॥

—महाभारत श्लो० ४-६, अध्याय २९६

१२८. न विशेपोऽस्ति वर्णानां सर्वंब्राह्ममिद जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्ट हि, कर्मभिर्वर्णता गतम् ॥

—महाभारत

द्वितीय अध्याय

साधक-जीवन

•

साधना के पथ पर

सम्राट् श्री ऋषभदेव ने दीर्घकाल तक राज्य का संचालन किया, प्रजा का पुत्रवत् पालन किया, प्रजा में फैली हुई अव्यवस्था का उन्मूलन किया, अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार किया, नीति मर्यादाओं को कायम किया। वे प्रजा के शोषक नहीं, पोषक थे, शासक ही नहीं सेवक भी थे। श्रीमद्भागवत के अनुसार उनके शासन काल में प्रजा की एक ही चाह थी कि प्रतिपल प्रतिक्षण हमारा प्रेम प्रभु में

(ख) अप्रवृत्ति कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयो. ।
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च तदाऽऽसन्न संकर ॥
त्रेतायुगे त्वविकल कर्मारम्भ प्रसिद्ध्यति ।
वर्णाना प्रविभागाश्च त्रेताया तु प्रकीर्तिता ॥
शान्ताश्च शुष्मिणश्चैव कर्मिणो दुःखिनस्तथा ।
तत प्रवर्तमानास्ते त्रेताया जज्ञिरे पुन ॥

—वायुपुराण ८।३३।४९।५० आदि अध्याय

(ग) तस्मान्न गोऽश्ववत् किञ्चिज्जातिभेदोऽस्ति देहिनाम् ।
कार्यभेदनिमित्तेन संकेत कृत्रिम. कृत. ॥

—भविष्य पुराण, अध्याय ४

[illegible], [illegible], [illegible], ते च [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]-
[illegible] [illegible] [illegible] देहिना-

ही लगा रहे। वे किसी भी वस्तु की चाह नहीं करते थे।[१२९] अन्त में अपना उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र भरत को बनाकर और शेष निन्यानवे पुत्रो को पृथक्-पृथक् राज्य देकर स्वयं साधना के पथ पर बढने के लिए प्रस्तुत हुए।[१३०]

सुभिक्षसुखसाधकतया च प्रशस्ता एवेति। महापुरुषप्रवृत्तिरपि सर्वत्र परार्थत्वव्याप्ता बहुगुणाल्प—दोपकार्यकारणविचारणापूर्विकैवेति।

• स्थानाङ्गपञ्चमाध्ययनेऽपि—धम्मं च णं चरमाणस्स पंच निस्सा ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—छक्काया (१) गणे, (२) राया, (३) गाहावई, (४) सरीरं (५) मित्याद्यालापकवृत्तौ राजा निश्रामाश्रित्य राजा नरपतिस्तस्य धर्मसहायकत्वं दुष्टेभ्य साधुरक्षणादित्युक्तमस्तीति परम-करुणापरीतचेतस परमधर्मप्रवर्तकस्य ज्ञानत्रितययुक्तस्य भगवतो राजधर्मप्रवर्तकत्वे न कापि अनौचिती चेतसि चिन्तनीया।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका-दूसरा वक्षस्कार

१२९ भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथञ्चन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसेवन विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण।

—श्री मद्भागवत ५।४।१८ पृ० ५५८-५५९

१३० (क) उवदिसित्ता पुत्तसय रज्जसए अभिसिंचइ।

—जम्बू० सू० ३६ पृ० ७७ अमोल०

(ख) उवदिसइत्ता पुत्तसय रज्जसए अभिसिंचइ।

—कल्पसूत्र सू० १९५ पृ० ५७ पुण्य०

(ग) त्रिपष्ठि०। १।३।१ से १७ प० ६८

(घ) ..... स्वतनयशतज्येष्ठ परमभागवत भगवज्जनपरायण भरत धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितशरीरमात्रपरिग्रह .. ... ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज।

—श्री मद्भागवत ५।५।२८।५६८

दान

अभिनिष्क्रमण के पूर्व श्री ऋषभदेव ने प्रभात के पुण्य-पलों में एक वर्ष तक एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्राएं प्रतिदिन दान दीं।[131] इस प्रकार एक वर्ष में तीन अरब अट्ठासी करोड़ और अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान दिया।[132] दान देकर, जन-जन के अन्तर्मानस में दान की भव्य-भावना उद्‌बुद्ध की।

महाभिनिष्क्रमण

भारतीय इतिहास में चैत्र कृष्णा अष्टमी का दिन[133] सदा स्मरणीय रहेगा, जिस दिन सम्राट् श्री ऋषभ राज्य-वैभव को ठुकराकर, भोग-विलास को तिलाञ्जलि देकर, परमात्मतत्त्व को जागृत करने के लिए "सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि" सभी पाप प्रवृत्तियों का परित्याग करता हूँ, इस भव्य-भावना के साथ विनीता नगरी से निकलकर सिद्धार्थ उद्यान में, अशोक वृक्ष के नीचे, षष्ठ भक्त के तप

---

१३१. एगा हिरण्णकोडी अट्ठेव अणूणगा सयसहस्सा ।
सूरोदयमाईयं दिज्जइ जा पायरासाओ ॥
—आव० निर्यु० गा० २३६

(ख) त्रिषष्टि० १।३।२३

१३२. तिन्नेव य कोडिसया अट्ठासीइं च हुंति कोडीओ ।
असियं च सयसहस्सा एयं संवच्छरे दिन्नं ॥
—आव० नि० गा० २४२

(ख) त्रिषष्टि० १।३।२८।प० ६८

१३३ जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चेत्तबहुले तस्स णं चेत्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खेणं ।
—कल्पसूत्र सू० १९५ पुण्य० पृ० ५७

(ख) चेत्तबहुलट्ठमीए चउहिं सहस्सेहिं सो उ अवरण्हे ।
सीया सुदंसणाए सिद्धत्थवणम्मि छट्ठेणं ॥
—आव० नि० गा० ३३६

से युक्त होकर सर्वप्रथम परिव्राट् बने।[136] भगवान् के प्रेम से प्रेरित होकर उग्रवंश, भोगवंश, राजन्य वंश, और क्षत्रिय वंश के चार सहस्र साथियो ने भी उनके साथ ही संयम ग्रहण किया।[137] यद्यपि उन चार

(ग) तदा च चैत्रबहुलाष्टम्या चन्द्रमसि श्रिते।
नक्षत्रमुत्तराषाढामह्नो भागेऽथ पश्चिमे॥
भवज्जयजयारावकोलाहलमिषाद् भृशम्।
उद्गिरद्भिर्मुदमिव, वीक्ष्यमाणो नरामरैः॥
उच्चखान चतसृभिर्मुष्टिभि: शिरस कचान्।
चतसृभ्यो दिग्भ्य शेषामिव दातुमना प्रभु॥

—त्रिषष्ठि० १।३। ६५ से ६७

१३४ जाव विणीय रायहाणि मज्झमज्झेण निगच्छइ, निगच्छइत्ता जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता असोगवरपायवस्स अहे जाव सयमेव चउमुट्ठिय लोय करेइ२त्ता छट्ठेण भत्तेण अप्पाणएण—

—कल्पसूत्र० सू० १९५ पृ० ५७

(ख) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, सू० ३६ पृ० ८०–८१ अमोल०

१३५ उग्गाण भोगाणं राइन्नाण च खत्तियाण च।
चउहिं सहस्सेहुसभो सेसाउ सहस्सपरिवारा।

—आव० नि० गा० ३४७

(ख) उग्गाण भोगाण राइन्नाण च खत्तियाण च चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं एग देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—कल्पसूत्र सू० १९५ पृ० ५७

(ग) उग्गाण भोगाण रायण्णाण च खत्तियाण च।
चउहिं सहस्सेहिं ऊसहो सेसा उ सहस्सपरिवारा॥

—समवायांग १९

(घ) उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं खत्तिआणं चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं—

—जम्बूद्वीप० सू० ३६ पृ० ८०–८१ अमोल०

सहस्र साथियो को भगवान् ने प्रव्रज्या प्रदान नही की, किन्तु उन्होंने भगवान् का अनुसरण कर स्वय ही लुञ्चन आदि क्रियाएँ की।[135]

विवेक के अभाव मे

भगवान् श्री ऋषभदेव श्रमण बनने के पश्चात् अखण्ड मौनव्रती बनकर एकान्त-शान्त स्थान मे ध्यानस्थ होकर रहने लगे।[136] जिनसेन के अनुसार उन्होंने छह महीने का अनशन व्रत अंगीकार किया। श्वेताम्बर साहित्य मे ऐसा स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध नही होता। वहाँ भिक्षा के सम्बन्ध मे जो विवरण मिलता है, वह इस प्रकार है—घोर

(ख) चतु सहस्रगणना नृपा प्राव्राजिषुस्तदा।
गुरोर्मतमजानाना स्वामिभक्त्यैव केवलम् ॥
यदस्मै रुचित भर्त्रे तदस्माकम् विशेषत ।
इति प्रव्रज्यादीक्षास्ते केवल द्रव्यलिङ्गिन ॥
—महापुराण पर्व १७ श्लो० २१२-२१३ पृ० ३८१

(ग) त्रिषष्टि १।३।७८ से ८० प० ७० ।

१३६. चउरो साहस्सीओ, लोय काऊण अप्पणा चेव।
जं एस जहा काही त तह अम्हेवि काहामो ॥
—आवश्यक निर्युक्ति गा० २३७

१३७ (क) णत्थि ण तस्स भगवन्तस्स कत्थइ पडिबन्धे।
—जम्बू० प्र० २ वक्षस्कार सू० ३१

(ख) अथ काय समुत्सृज्य तपोयोगे समाहित ।
वाचयमत्वमास्थाय तस्थौ विश्वेड् विमुक्तये ॥
षण्मासानशन धीर प्रतिज्ञाय महाधृति ।
योगैकाग्र्यनिरुद्धान्तर्बहिष्करणविक्रिय ॥
—महापुराण १८।१-२ पृ० ३९७

(ग) [illegible] गृहीतोन्मत्तपिशाच इव [illegible] ।
—भागवत ५।५।२९ पृ० ५५५

से युक्त होकर सर्वप्रथम परिव्राट् बने।[१३४] भगवान् के प्रेम से प्रेरित होकर उग्रवंश, भोगवंश, राजन्य वंश, और क्षत्रिय वंश के चार सहस्र साथियों ने भी उनके साथ ही संयम ग्रहण किया।[१३५] यद्यपि उन चार

(ग) तदा च चैत्रबहुलाष्टम्या चन्द्रमसि स्थिते।
नक्षत्रमुत्तराषाढामह्नो भागेऽथ पश्चिमे॥
भवज्जयजयारावकोलाहलमिषाद् भृशम्।
उद्गिरन्निव मुदमिव, वीक्ष्यमाणो नगामरै॥
उच्चखान चतमृभिर्मुष्टिभि शिरस कचान्।
चतमृभ्यो दिग्भ्य शेषामिव दातुमना प्रभु॥

—त्रिषष्टि० १।३। ६५ से ६७

१३४. जाव विणीय रायहाणि मज्झमज्झेणं निगच्छइ, निगच्छइत्ता जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता असोगवरपायवस्स अहे जाव सयमेव चउमुट्ठियं लोयं करेइ२त्ता छट्ठेणं भत्तेणं अप्पाणएणं—

—कल्पसूत्र० सू० १९५ पृ० ५७

(ख) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, सू० ३६ पृ० ८०–८१ अमा२०

१३५ उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं च खत्तियाणं च।
चउहिं सहस्सेहुसभो सेसाउ सहस्सपरिवारा॥

—आव० नि० गा० २४७

(ख) उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं च खत्तियाणं च चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—कल्पसूत्र सू० १९५ पृ० ५७

(ग) उग्गाणं भोगाणं रायण्णाणं च खत्तियाणं च।
चउहिं सहस्सेहिं ऊसहो सेसा उ सहस्सपरिवारा॥

—समवायांग १५

(घ) उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं खत्तिआणं चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं—

—जम्बूद्वीप० सू० ३६ पृ० ८०–८१ अमोल०

सहस्र साथियो को भगवान् ने प्रव्रज्या प्रदान नही की, किन्तु उन्होने भगवान् का अनुसरण कर स्वत ही लु चन आदि क्रियाएँ की।[136]

विवेक के अभाव में

भगवान् श्री ऋषभदेव श्रमण बनने के पश्चात् अखण्ड मौनव्रती बनकर एकान्त-शान्त स्थान मे ध्यानस्थ होकर रहने लगे।[137] जिनसेन के अनुसार उन्होने छह महीने का अनशन व्रत अगीकार किया। श्वेताम्बर साहित्य मे ऐसा स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध नही होता। वहाँ भिक्षा के सम्बन्ध मे जो विवरण मिलता है, वह इस प्रकार है—घोर

(ड) चतु सहस्रगणना नृपा प्राव्राजिषुस्तदा।
गुरोर्मतमजानाना स्वामिभक्त्यैव केवलम्॥
यदस्मै रुचित भर्त्रे तदस्मभ्य विशेषत।
इति प्रब्रज्यदीक्षास्ते केवल द्रव्यलिङ्गिन॥

—महापुराण पर्व १७ श्लो० २१२-२१३ पृ० ३८१

(च) त्रिषष्टि १।३।७८ से ८० प० ७०।

१३६ चउरो साहस्सीओ, लोय काऊण अप्पणा चेव।
ज एस जहा काही त तह अम्हेवि काहामो॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३३७

१३७ (क) णत्थि ण तस्स भगवतस्स कत्थइ पडिबधे।

—जम्बू० प्र० २ वक्षस्कार सू० ३६

(ख) त्यक्त्वा काय समुत्सृज्य तपोयोगे समाहित।
वाचयमत्वमास्थाय तस्थौ विश्वेड् विमुक्तये॥
षण्मासानशनं धीर' प्रतिज्ञाय महाधृति।
योगैकाग्र्यनिरुद्धान्तर्बहिष्करणविक्रिय॥

—महापुराण १८।१-२ पृ० ३९७

(ग) जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूत वेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनाना गृहीतमौनव्रतस्तूष्णी बभूव।

—भागवत ५।५।२९ पृ० ५६३

अभिग्रहो को ग्रहण कर अनासक्त बन भिक्षाहेतु ग्रामानुग्राम विचरण करते थे,[138] पर भिक्षा और उसकी विधि मे जनता अनभिज्ञ थी, अत भिक्षा उपलब्ध नहीं होती थी।[139] वे चार सहस्र श्रमण चिरकाल तक यह प्रतीक्षा करते रहे कि भगवान् मौन छोडकर पूर्ववत् हमारी सुध-बुध लेंगे, सुख सुविधा का प्रयत्न करेंगे, पर भगवान् आत्मस्थ रहे, कुछ नही बोले। वे द्रव्यलिंगधारी श्रमण भूख-प्यास से सत्रस्त हो सम्राट् भरत के भय से[140] पुन गृहस्थ न बनकर वल्कलधारी तापस आदि हो गये।[141] वस्तुत विवेक के अभाव मे साधक साधना से पथभ्रष्ट हो जाता है।

साधक जीवन

भगवान् श्री ऋषभदेव अम्लान चित्त से, अव्यथित मन से भिक्षा के लिए नगरो व ग्रामो मे परिभ्रमण करते। भावुक मानव

---

१३८. उसभो वरवसभगई घेत्तूण अभिग्गह परमघोर।
वोसट्ठचत्तदेहो विहरइ गामाणुगाम तु॥
—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३३८

१३९ न वि ताव जणो जाणइ का भिक्खा केरिसा व भिक्खयरा ?
—आवश्यक नि० गा० ३३९

(ख) जदि भिक्खस्स अतीति तो सामितो एे आगतोत्ति वत्थेहि आसेहि य हत्थीहि आभरणेहि कन्नाहि य निमन्तेत्ति।
—आवश्यक चूर्णि पृ० १६२

१४०. भरतलज्जया गृहगमनमयुक्तम्, आहारमन्तरेण चासितु न शक्यते—
—आवश्यक नि० मल० पृ० २१६

(ख) जेण जणो भिक्ख ण जाणति दाउ तो जे ते चत्तारि सहस्सा भिक्ख अलभता तेण माणेण घरपि ण वच्चन्ति भरहस्स य भएण।
—आवश्यक चूर्णि पृ० १६२

१४१. ते भिक्खमलभमाणा वणमज्झे तावसा जाता।
—आवश्यक नि० गा० ३३९

करने के लिए अभ्यर्थना करते, पर कोई भी विधिवत् भिक्षा न देता। भगवान् उन वस्तुओं को बिना ग्रहण किये जब उलटे पैरों लौट जाते तो वे नहीं समझ पाते कि भगवान् को किस वस्तु की आवश्यकता है?

श्रीमद्भागवतकार ने भगवान् श्री ऋषभदेव को श्रमण बनने के पश्चात् अज्ञ व्यक्तियों ने जो दारुण कष्ट प्रदान किये उसका शब्द चित्र उपस्थित किया है,[143] पर वैसा वर्णन जैन साहित्य में नहीं है। जैन-साहित्य के परिशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि उस युग का मानव इतना क्रूर प्रकृति का नहीं था, जितना भागवतकार ने

कोऽप्यवादीदिद सज्जं, स्नानीय वसनं जलम्।
तैलं पिष्टातकश्चेति, स्नाहि स्वामिन् प्रसीद न ॥
कोऽप्यूचे स्वोपयोगेन, स्वामिन्! मम कृतार्थय।
जात्यचन्दनकर्पूरकस्तूरीयक्षकर्दमान् ॥
कोऽप्युवाच जगद्रत्न! रत्नालङ्करणानि न।
स्वाङ्गाविरोपणात् स्वामिन्नलकुरु दया कुरु ॥
एवं व्यज्ञपयत् कोऽपि, गृहे समुपविश्य मे।
स्वामिन्नङ्गानुकूलानि, दुकूलानि पवित्रय ॥
कश्चिदप्यब्रवीदेव, देव! देवाङ्गनोपमाम्।
प्रभो! गृहाण न कन्या, धन्या स्मस्त्वत्समागमात् ॥
कोऽप्यूचे पादचारेण, क्रीडयाऽपि कृतेन किम्?।
इममारोह शैलाभ कुञ्जर राजकुञ्जर! ॥

—त्रिषष्टि १।३।२५१–२५८

१४३ तत्र-तत्र पुरग्रामाकरखेटवाटखर्वट-शिबिर-व्रजघोषसार्थगिरिवनाश्रमादिष्वनुपथमवनिपसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रज प्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवासत्संस्थान एतस्मिन् देहोपलक्षणे सदपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनासमारोपिताहममाभिमानत्वादविखण्डितमना: पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम।

— भागवत ५।५।३०।५६४

चित्रित किया है। भागवत का प्रस्तुत वर्णन श्रमण भगवान् महावीर के अनार्य देशों में विहरण के समान है।[144]

विशिष्ट लाभ

एक वर्ष पूर्ण हुआ। कुरुजनपदीय गजपुर के अधिपति बाहुबली के पौत्र एवं सोमप्रभ राजा के पुत्र श्रेयांस ने स्वप्न देखा कि सुमेरु पर्वत श्याम वर्ण का हो गया है। उसे मैंने अमृत कलश से अभिषिक्त कर पुनः चमकाया।[145] नगरश्रेष्ठी सुबुद्धि ने उसी रात्रि में स्वप्न देखा कि सूर्य की हजार किरणें अपने स्थान से चलित हो रही थीं कि श्रेयांस ने उन रश्मियों को पुनः सूर्य में संस्थापित कर दिया।[146] राजा

---

१४४ तुलना कीजिये—आचारांग प्रथम श्रु० अध्या० ६ उद्दे० ३ में।

१४५. छउमत्थो य वरिसं बहलीअडंबइल्लेहिं विहरिऊण गयपुरं गतो, तत्थ भरहस्स पुत्तो सेज्जंसो, अन्ने भणन्ति बाहुबलिस्स सुतो सोमप्पभो सेयंसो य, ते य तीसे रत्तिं [illegible] नगरसेट्ठी य सुमिणे पासन्ति, [illegible] सामन्त समीवे कहेन्ति, सेज्जंसो—सुणह अज्ज मया य सुमिणो दिट्ठ-मेरु किल चलितो, [illegible] अमयकलसेण अभिसित्तो साभाविगो जातो परिब्भमिओ नगरिं।

— आवश्यक चूर्णि जिन० पृ० १६२–१६३

(ख) कुरुजणवए गयपुरं नाम नगरं, तत्थ बाहुबलिपुत्तो सोमप्पभो राया, तस्स पुत्तो सेज्जंसो कुमारो, सो सुमिणे मन्दरं पव्वयं सामवण्णं पासइ, ततो अणेण अमयकलसेण अभिसित्तो अब्भहियं सोभिउमाढत्तो।

—आवश्यक निर्युक्ति मल० वृ० प० २१७

(ग) त्रिषष्टि १।३।२४४–२४५।

१४६ नगरसेट्ठी सुबुद्धिनामो, सो सुमिणे सूरस्स रस्सिसहस्सं ठाणाओ चलियं पासति, नवरं सिज्जंसेण [illegible] पडिपुण्णो जाओ।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० १४५।१

सोमप्रभ ने स्वप्न देखा कि एक महान् पुरुष शत्रुओं से युद्ध कर रहा है, श्रेयांस ने उसे सहायता प्रदान की, जिससे शत्रु का बल नष्ट हो गया।[147] प्रात होने पर सभी स्वप्न के सम्बन्ध मे चिन्तन-मनन करने लगे। चिन्तन का नवनीत निकला कि अवश्य ही श्रेयांस को विशिष्ट लाभ होने वाला है।[148]

(ख) नगरसेट्ठी सुबुद्धी नाम, सो सुमिणे पासइ-सूरस्स रस्सिसहस्स ठाणातो चलितं, नवरि सेज्जंसेण हुक्खुत्त ततो सो सूरो अहियतरतेयसम्पन्नो जातो।

—आवश्यक मल० वृ० प० २१७-२१८

(ग) त्रिषष्ठि० १।३।२४६-२४७।

नोट—आवश्यक चूर्णि मे जो स्वप्न नगरश्रेष्ठी का दिया है वह आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति और त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र मे राजा सोमप्रभ का दिया है और सोमप्रभ का स्वप्न नगर श्रेष्ठी का दिया है।

—लेखक

(घ) सेट्ठी भणती—सुणह ज मया दिट्ठ—अज्ज किल कोऽवि पुरिसो महप्पमाणो महत्ता रिवुबलेण सह जुज्भन्तो दिट्ठो तो सेज्जस सामी य मे सहायो जातो, ततो अणेण पराजित परबल एय दट्ठूण म्हि पडिबुद्धो।

—आवश्यक चूर्णि १६३

१४७ (क) राइणा एक्को पुरिसो महप्पमाणो महया रिउबलेण सह जुज्भन्तो दिट्ठो।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, प० १४५

(ख) राइणा सुमिणे एक्को पुरिसो महप्पमाणो महया रिउबलेण जुज्भन्तो दिट्ठो, सेज्जसेण साहज्ज दिण्ण ततो तेण तब्बलं भग्गं ति।

—आवश्यक मल० वृत्ति० प० २१८।१

(ग) त्रिषष्ठि १।३।२४८

१४८. कुमारस्स महतो कोऽवि लाभो भविस्सइ त्ति।

—आवश्यक मल० वृ० प० २१८।१

अक्षय तृतीया

भगवान् श्री ऋषभदेव उसी दिन विचरण करते हुए गजपुर पधारे। चिरकाल के पश्चात् भगवान् को निहार कर पौरजन प्रमुदित हुए। श्रेयांस भी अत्यधिक आह्लादित हुआ। भगवान् परिभ्रमण करते हुए श्रेयांस के यहाँ पधारे।[149] भगवान् के दर्शन और भगवद्रूप के चिन्तन से श्रेयांस को पूर्वभव की स्मृति उद्बुद्ध हुई।[150] स्वप्न का सही तथ्य परिज्ञात हुआ। उसने प्रेमपरिपूरित करों से ताजा आये हुए इक्षु रस के कलशों को ग्रहण कर भगवान् के कर कमलों में रस प्रदान किया।[151] इस प्रकार भगवान् श्री ऋषभदेव को

---

१४९ भगवंपि य णं उज्जो गयपुरनगरम्मि अइगओ सेयंसभवणमइगतो।

—आव० म० वृ० २१८

१५० जाइस्सरणं जायं -

—आव० म० वृ० २१८

(ख) संप्रेक्ष्य भगवद्रूपं श्रेयाञ्जातिस्मरोऽभवत्।

—महापुराण जिन० ७८।२०।८५

१५१. (क) गयपुर सेज्जंस खोयरसदाण वसुहार पीढ गुरुपूया।

—आव० निर्युक्ति० गा० ३४५

(ख) उसभस्स उ पारणए

इक्खुरसो आसि लोगनाहस्स।

—आव० नि० गा० ३४४

(ग) उसभस्स पढमभिक्खा,

खोयरसो आसि लोगणाहस्स।

—समवायांग

(घ) ततो [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

एक सम्वत्सर के पश्चात् भिक्षा प्राप्त हुई[152] और सर्व प्रथम इक्षुरस का पान करने के कारण वे काश्यप के नाम से भी विश्रुत हुए।[153]

स्त्यानो नु स्तम्भितोन्वासीद् व्योम्नि लग्नशिखो रसः।
अञ्जनो स्वामिनोऽचिन्त्यप्रभावा. प्रभव खलु॥

ततो भगवता तेन, रसेनाऽकारि पारणम्।
सुरासुरनृणा नेत्रै पुनस्तद्दर्शनामृतै॥

—त्रिषष्ठि० १।३।२९१-२९५

(ङ) श्रेयान् सोमप्रभेणामा, लक्ष्मीमत्या च सादरम्।
रसमिक्षोरदात् प्रासुमुत्तानीकृतपाणये॥

—महापुराण जिन० १००।२०।४५४

(च) एएसि णं चउव्वीसाए तित्थगराण चउव्वीस पढमभिक्खा-दायारो होत्था तं जहा सिज्जस'' '।

—समवायाङ्ग

१५२ सवच्छरेण भिक्खा लद्धा
उसभेण लोगनाहेण।
सेसेहि बीयदिवसे
लद्धाओ पढमभिक्खाओ॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३४२

(ख) सवच्छरेण भिक्खा लद्धा,
उसभेण लोयणाहेण।

—समवायाग

१५३ कासं—उच्छू, तस्स विकारो—कास्य रस सो जस्स पाण सो कासवो उसभ स्वामी।

—दशवैकालिक—अगस्त्यसिंह चूर्णि

(ख) कासो नाम इक्खु भण्णइ, जम्हा त इक्खु पिवति तेन काश्यपा अभिधीयन्ते।

—दशवैकालिक—जिनदास चूर्णि पृ० १३२

(ग) पुव्वगा य भगवतो इक्खुरस पिविताऽता तेण गोत्त कासव ति।

—आवश्यक चूर्णि जिनदास पृ० १५२

आचार्य जिनसेन के शब्दो मे काश्य तेज को कहते है। भगवान् श्री ऋषभदेव उस तेज के रक्षक थे अत काश्यप कहलाये।[१५४]

प्रस्तुत अवसर्पिणी काल मे सर्व प्रथम वैशाख शुक्ला तृतीया को श्रेयास ने इक्षु रस का दान दिया अत वह तृतीया इक्षु-तृतीया या अक्षय तृतीया पर्व के रूप मे प्रसिद्ध हुई।[१५५] दान से वह तिथि भी अक्षय हो गई।

(घ) वर्षीयान् वृषभो ज्यायान्,
पुरुराद्य प्रजापति ।
ऐक्ष्वाकु [कः] काश्यपो ब्रह्मा,
गौतमो नाभिजोऽग्रज ॥
— धनञ्जय नाममाला ११४ पृ० ५७

१५४ काश्यमित्युच्यते तेज काश्यपस्तस्य पालनात् ।
—महापुराण १६।१६।२७०

१५५ राधशुक्लतृतीयाया दानमासीत् तदक्षयम् ।
पर्वाक्षयतृतीयेति, ततोऽद्यापि प्रवर्तते ॥
श्रेयासोऽसमभवन्। दानधर्म प्रवृत्तवान् ।
[illegible] ॥
—त्रिषष्टि० १।३।३०१–३०२

(ख) वैशाख सुदि तृतीयाक्षय पर्वतोऽत्र मान्य जात ।
—[illegible] पृ० २०८।१

(ग) [illegible] ।
—कल्पद्रुम कलिका पृ० १४६

(घ) [illegible] ।
[illegible] ॥

तृतीय अध्याय

तीर्थंकर जीवन

•

अरिहन्त के पद पर

एक हजार वर्ष तक श्री ऋषभदेव शरीर से ममत्व रहित होकर वासनाओ का परित्याग कर, आत्म-आराधना, सयम-साधना और मनोमंथन करते रहे।[१५६] जब भगवान् अष्टम तप की साधना करते हुए पुरिमताल नगर के बाहर शकटमुख उद्यान मे वटवृक्ष के नीचे

---

१५६. उसभे ण अरहा कोमलिए एग वाससहस्स
निच्च वोसट्ठकाये चियत्तदेहे जाव अप्पाण
भावेमाणस्स एक्क वाससहस्स विइक्कत ॥

—कल्पसूत्र सू० १९६ पृ० ५८ पुण्य०

(ख) सेण भगव वासावासवज्ज हेमन्तगिम्हासु गामे एगराइए, नगरे पचराईए, ववगयहास-सोग-अरइ-रइ-भय-परित्तासे, णिम्ममे णिरहकारे लहुभूए अगथे वासी तच्छणे अदुट्ठे चदणाणुलेवणे अरत्ते लेट्ठु मि कचणम्मि असमे, इहलोए परलोए अपडिबद्धे जीविअ-मरणे निरवकखे, ससारपारगामी कम्मसघणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए विहरइ। तस्स ण भगवन्तस्स एएण विहारेण विहरमाणस्स एगे वाससहस्से विइक्कन्ते।

—जम्बूद्वीप० सू० ४०-४१ पृ० ८४ असो०

तओ ण जे से हेमन्ताण चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे फग्गुणबहुले तस्स ण फग्गुणबहुलस्स एक्कारसीपक्खेण पुव्वण्हकालसमयसि

ध्यान-मुद्रा में अवस्थित थे। फाल्गुन कृष्णा ग्यारस का दिन था, पूर्वाह्न का समय था, आत्म-मथन चरम सीमा पर पहुँचा। आत्मा पर से घन-घाति कर्मों का आवरण हटा, भगवान् को केवल ज्ञान और केवल दर्शन का अपूर्व आलोक प्राप्त हुआ। जैनागमों में जिसे केवल

पुरिमतालस्स नयरस्स बहिया सगडमुहंसि उज्जाणंसि नग्गोहवरपायवस्स अहे अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ।

—कल्पसूत्र० सू० १९६ पृ० ५८ पुण्य०

(ख) तित्थयराण पढमो उसभरिसी विहरिओ निरुवसग्गो।
अट्ठावओ नगवरो अग्गा भूमी जिणवरस्स॥
छउमत्थपरिआओ वाससहस्सं तओ पुरिमताले।
निग्गोहस्स य हिट्ठा उप्पन्नं केवलं नाणं॥
फग्गुणबहुले इक्कारसीइ अह अट्ठमेण भत्तेणं।
उप्पन्नम्मि अणंते महव्वया पंच पन्नवए॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३३८ से ३४०

(ग) फग्गुणबहुलेक्कारसि उत्तरसाढाहि नाणमुसभस्स।

—आवश्यक नि० गा० २६३

(घ) अथ व्रतात् सहस्राब्द्या, फाल्गुनैकादशीदिने।
[illegible] चन्द्रे दिनामुखे॥
उत्पेदे केवलज्ञान त्रिकालविषय [illegible]।
[illegible], [illegible] भुवनत्रय॥

—त्रिषष्टि० १।३।२६९–२६७

(ङ) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति० पृ० ८४ [illegible]।
(च) [illegible] २४७ गा० ३३–४।
(छ) योग प्रकाश [illegible]।
(ज) फाल्गुने मासि [illegible]।
[illegible]॥

—[illegible]

ज्ञान कहा है उसे ही बौद्ध ग्रन्थो मे प्रज्ञा कहा है और सांख्य-योग मे विवेकख्याति कहा है।[१५७]

भगवान् को केवल ज्ञान की उपलब्धि वट वृक्ष के नीचे हुई थी अत वटवृक्ष आज भी आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

सम्राट् भरत का विवेक

आवश्यक निर्युक्ति,[१५८] आवश्यक चूर्णि,[१५९] त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्र[१६०] आदि श्वेताम्बर जैन ग्रन्थो के अनुसार जिस समय भगवान् श्री ऋषभदेव को केवल ज्ञान की उपलब्धि हुई, उसी समय सम्राट् भरत की आयुधशाला मे चक्ररत्न भी उत्पन्न हुआ और इसकी सूचना

---

१५७ विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपाय ।

—योगसूत्र २।२६

१५८ उज्जाणपुरिमताले पुरी विणीआइ तत्थ नाणवर ।
चक्कुप्पया य भरहे निवेअण चेव दुण्हपि ॥

—आवश्यक निर्युक्ति, गा० ३४२

१५९ भरहस्स य चारपुरिमा णिच्चमेव दिवसदेवसिय वट्टमाणि णिवेदेंति, तेहिं तस्स णिवेदित—जहा तित्थगरस्स णाण उप्पन्नति, आयुहघरिणणऽवि णिवेदित, जहा—चक्करयण उप्पन्न। ताहे सो चिन्तेउमारद्धो, दोण्हपि महिमा कायव्वा, कतर पुव्व करेमित्ति ? ताहे भणति-ताततमि पूतिए, चक्क पूयितमेव भवति चक्कस्सवि पूयणिज्जो, ताहे मव्विड्ढीए पत्थितो।

—आवश्यक चूर्णि, जिन० पृ० १८१

१६० प्रणम्य यमकस्तत्र, भरतेश व्यजिज्ञपत् ।
दिष्ट्याऽद्य वर्धसे देवाऽनया कल्याणवार्त्तया ॥
पुरे पुरिमतालाख्ये कानने शकटानने ।
युगादिनाथपादानामुदपद्यत केवलम ॥
प्रणम्य शमकोऽप्युच्चै स्वग्मेव व्यजिज्ञपत् ।
इदानीमायुधागारे, चक्ररत्नमजायत ॥

—त्रिषष्टि १।३।५११-५१३

एक साथ ही "यमक" और "शमक" दूनो के द्वारा सम्राट् भरत को मिली।

आचार्य श्री जिनसेन ने उपर्युक्त दो सूचनाओं के अतिरिक्त तृतीय पुत्र की सूचना का भी उल्लेख किया है।[161]

ये सारी सूचनाएं एक साथ मिलने से भरत एक क्षण असमंजस मे पड़ गये[162]—क्या प्रथम चक्ररत्न की अर्चना करनी चाहिए, या पुत्रोत्सव करना चाहिए? द्वितीय क्षण उन्होंने चिन्तन की चाँदनी मे सोचा—इनमें से भगवान् को केवल ज्ञान उत्पन्न होना धर्म का फल है, पुत्र होना काम का फल है और देदीप्यमान चक्ररत्न का उत्पन्न होना अर्थ का फल है।[163] एतदर्थ मुझे प्रथम चक्ररत्न या पुत्ररत्न की नहीं, अपितु भगवान् की उपासना करनी चाहिए। क्योंकि वह सभी कल्याणों का मुख्य स्रोत है, महान् से महान् फल देने वाली है।[164]

---

१६१ श्रीमान् भरतराजर्षि बुबुधे युगपत् त्रयम्।
गुरोः कैवल्यसम्भूतिं सुतोत्पत्तिञ्च चक्रिणः॥
—महापुराण, पर्व० २४, श्लो० २ पृ० ५७३

१६२ पर्याकुल इवासीच्च क्षणं तद्यौगपद्यतः।
किमत्र प्राक्करणीयं मयेत्याकलयन् प्रभुः॥
—महापुराण २४।२।५७३

(ख) उत्पन्नकेवलज्ञानं, [illegible]।
आदौ [illegible] क्षणं नृपः।
—त्रिषष्ठि० १।३।५१४

१६३. तत्र धर्मफलं तीर्थं पुत्रः स्यात् कामजं फलम्।
अर्थानुबन्धिनोऽर्थस्य फलं [illegible]॥
—महापुराण २४।६।५७३

(ख) [illegible]
[illegible]।
—त्रिषष्ठि १।३।५१६

१६४ [illegible]।
[illegible]॥
—महापुराण [illegible] २४।८।५७३

ज्ञान कहा है उसे ही बौद्ध ग्रन्थो मे प्रज्ञा कहा है और साख्य-योग मे विवेकख्याति कहा है।[१५७]

भगवान् को केवल ज्ञान की उपलब्धि वट वृक्ष के नीचे हुई थी अत वटवृक्ष आज भी आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

सम्राट् भरत का विवेक

आवश्यक निर्युक्ति,[१५८] आवश्यक चूर्णि,[१५९] त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्र[१६०] आदि श्वेताम्बर जैन ग्रन्थो के अनुसार जिस समय भगवान् श्री ऋषभदेव को केवल ज्ञान की उपलब्धि हुई, उसी समय सम्राट् भरत की आयुधशाला मे चक्ररत्न भी उत्पन्न हुआ और इसकी सूचना

---

१५७ विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपाय ।

—योगसूत्र २।२६

१५८. उज्जाणपुरिमताले पुरी विणीआइ तत्थ नाणवरं ।
चक्कुप्पया य भरहे निवेअण चेव दुण्हपि ॥

—आवश्यक निर्युक्ति, गा० ३४२

१५९ भरहस्स य चारपुरिसा णिच्चमेव दिवसदेवसिय वट्टमाणि णिवेदेंति, तेहि तस्स णिवेदित—जहा तित्थगरस्स णाण उप्पन्नति, आयुहघरिएणऽवि णिवेदित, जहा—चक्करयण उप्पन्न। ताहे सो चिन्तेउमारद्धो, दोण्हपि महिमा कायव्वा, कतर पुव्व करेमित्ति? ताहे भणति-तातमि पूतिए, चक्क पूयितमेव भवति चक्कम्मवि पूयणिज्जो, ताहे सव्विड्ढीए पत्थितो।

—आवश्यक चूर्णि, जिन० पृ० १८१

१६०. प्रणम्य यमकस्तत्र, भरतेश व्यजिज्ञपत्।
दिष्ट्याऽद्य वर्धसे देवाऽनया कल्याणवार्त्तया ॥
पुरे पुरिमतालाख्ये कानने शकटानने।
युगादिनाथपादानामुदपद्यत केवलम् ॥
प्रणम्य शमकोप्युच्चै स्वरमेव व्यजिज्ञपत्।
इदानीमायुधागारे, चक्ररत्नमजायत ॥

—त्रिषष्ठि १।३।५११–५१२

एक साथ ही "यमक" और "शमक" दूतों के द्वारा सम्राट् भरत को मिली।

आचार्य श्री जिनसेन ने उपर्युक्त दो सूचनाओं के अतिरिक्त तृतीय पुत्र की सूचना का भी उल्लेख किया है।[161]

ये सारी सूचनाएँ एक साथ मिलने से भरत एक क्षण असमंजस में पड़ गये[162]—क्या प्रथम चक्ररत्न की अर्चना करनी चाहिए, या पुत्रोत्सव करना चाहिए? द्वितीय क्षण उन्होंने चिन्तन की चाँदनी में सोचा—इनमें से भगवान् को केवल ज्ञान उत्पन्न होना धर्म का फल है, पुत्र होना काम का फल है और देदीप्यमान चक्ररत्न का उत्पन्न होना अर्थ का फल है।[163] एतदर्थ मुझे प्रथम चक्ररत्न या पुत्ररत्न की नहीं, अपितु भगवान् की उपासना करनी चाहिए। क्योंकि वह सभी कल्याणों का मुख्य स्रोत है, महान् से महान् फल देने वाली है।[164]

---

१६१ श्रीमान् भरतराजर्षि बुबुधे युगपत् त्रयम्।
गुरोः कैवल्यसम्भूतं सूतिञ्च सुतचक्रयोः॥
—महापुराण, पर्व० २४, श्लो० २ पृ० ५७३

१६२. [illegible] क्षण [illegible]।
किमत्र प्रागनुष्ठेयं [illegible] प्रभुः॥
—महापुराण २४।२।५७३

(ख) उत्पन्न केवलज्ञान [illegible]।
[illegible] क्षणं नृप।
—त्रिषष्टि० १।३।५१४

१६३. तत्र धर्मफलं तीर्थं पुत्रः स्यात् कामजं फलम्।
अर्थानुबन्धिनोऽर्थस्य फलं [illegible] प्रभास्वरम्॥
—महापुराण २४।६।५७३

(ख) [illegible]
[illegible]।
—त्रिषष्टि १।३।५१५

१६४. [illegible]।
[illegible]॥
—महापुराण जि० २४।८।५७३

चक्ररत्न या पुत्र रत्न तो इस लोक के जीवन को ही सुख प्रदान करने वाले है किन्तु इस लोक और परलोक दोनो मे ही जीवन को सुखी बनाने वाला भगवान् का दर्शन ही है,[१६५] अत मुझे सर्वप्रथम भगवान् श्री ऋषभदेव के दर्शन व चरण स्पर्श करना चाहिए।[१६६]

माँ मरुदेवी की मुक्ति

सम्राट् भरत भगवान् के दर्शन हेतु सपरिजन प्रस्थित हुए। माँ मरुदेवी भी अपने लाडले पुत्र के दर्शन हेतु चिरकाल से छटपटा रही थी, प्यारे पुत्र के वियोग से वह व्यथित थी। उसके दारुण कष्ट की कल्पना करके वह कलप रही थी। प्रतिपल-प्रतिक्षण लाड़ले लाल की स्मृति से उसके नेत्रो मे आँसू बरस रहे थे।[१६७] जब उसने सुना कि उसका प्यारा लाल विनीता के बाग मे आया है तो वह भी भरत के साथ हस्ती पर आरूढ होकर चल पडी। भरत के विराट् वैभव को देखकर उसने कहा—बेटा भरत ! एक दिन मेरा प्यारा ऋषभ भी इसी प्रकार राज्यश्री का उपभोग करता था, पर इस समय वह क्षुधा पिपासा से पीडित होकर कष्टो को सहन करता हुआ विचरता है। पुत्र प्रेम से आँखे छलछला आई। भरत के द्वारा तीर्थङ्करो की दिव्य विभूति का शब्दचित्र प्रस्तुत करने पर भी उसे सन्तोष नही हो रहा था।[१६८] किन्तु समवसरण के सन्निकट

---

१६५. तायम्मि पूइए चक्क पूइअ पूअणारिहो ताओ।
इहलोइअ तु चक्क परलोअसुहावहो ताओ।
—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३४३

१६६ निश्चिचायेति राजेन्द्रो गुरुपूजनमादित.।
—महापुराण० २४।६।५७३

१६७ त्रिषष्ठि० पर्व० १. स० ४, पृ० १२४।२५

१६८. भगवतो य माता भगति भरहस्स रज्जविभूतिं दट्ठूणं—मम पुत्तो एव चेव णग्गओ हिंडति। ताहे भरहो भगवतो विभूतिं वण्णेति, सा ण पत्तियति, ताहे गच्छतेण भणिता—एहि जा ते भगवतो विभूतिं

पहुँचते ही श्री ऋषभदेव को ज्यों ही समवसरण में इन्द्रों द्वारा अर्चित देखा त्यों ही चिन्तन का प्रवाह बदला। आर्त ध्यान से शुक्ल ध्यान में लीन हुई। ध्यान का उत्कर्ष बढ़ा, मोह का बन्धन सर्वांशतः टूटा। वह ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय को नष्ट कर केवल ज्ञान, केवल दर्शन की धारिका बन गई[169] और उसी क्षण शेष कर्मों को भी नष्ट कर हस्ती पर आरूढ़ ही सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गई।[170]

रुयामि, जदि पेच्छेज्जा मम सहस्सभागेणवि अत्थि त्ति, नाए [illegible] पीति।

—आवश्यक चूर्णि–जिन० पृ० १८१

(ख) मम पुत्तस्स एरिसी रज्जसिरी आसि तं पय सो सुहपिपासाछुहा-[illegible] गओ नगओ, इहइत्ति उच्चेव [illegible] भगवस्स [illegible] [illegible] तत्थवि न पत्तिच्चिताइत्ता, पुत्तसोगेण य मे [illegible] चक्खु जाय स्सतीए ....

—आवश्यक मलय० वृत्ति० पृ० २२८

१६९ भगवतो य छत्ताइच्छत्तं पेच्छंतीए चेव केवलनाणं उप्पन्नं

—आव० चूर्णि० पृ० १८१

(ख) ततो तीए भगवओ छत्ताइच्छत्तं पासंतीए चेव केवलनाणं--

—आव० मल० वृ० २२८

(ग) [illegible]
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

—त्रिषष्टि० १।३।५२८–५२९

१७०. तं समयं च णं आउं खुट्टं सिद्धा, देवेहि य से पूया कया।

—आवश्यक चूर्णि जिन० पृ० १८१

(ख) [illegible] ।
[illegible] ॥

—त्रिषष्टि० १।३।५३०

कितने ही आचार्यों का यह अभिमत है कि भगवान् के शब्द कर्णकुहरों मे गिरने से उन्हे आत्मज्ञान हुआ और वे मुक्त हो गई।[१७१] प्रस्तुत अवसर्पिणी मे सर्वप्रथम केवलज्ञान श्री ऋषभदेव को हुआ और मोक्ष मरुदेवी माता को।[१७२]

आचार्य जिनसेन ने स्त्रीमुक्ति न मानने के कारण ही प्रस्तुत घटना का उल्लेख नही किया है।

धर्म चक्रवर्ती

जिन बनने के पश्चात् भगवान् श्री ऋषभदेव स्वय कृतकृत्य हो चुके थे। वे चाहते तो एकान्त शान्त स्थान मे अपना शेष जीवन व्यतीत करते, पर वे महापुरुष थे। उन्होने समस्त प्राणियो की रक्षारूप दया के पवित्र उद्‌देश्य से प्रवचन किया।[१७३] एतदर्थ ही भगवान् श्री महावीर ने अपने अन्तिम प्रवचन मे श्री ऋषभदेव को धर्म का मुख कहा है।[१७४] और ब्रह्माण्ड पुराण मे भी श्री ऋषभदेव

---

१७१ अन्ने भणति—भगवओ धम्मकहासद्द सुणेंतीए तक्काल च तीए खुट्टमाउय ततो सिद्धा।

—आवश्यक मलय० वृ० २२९

१७२. मउय मयस्स देहो त
मरुदेवीए पढमसिद्धोत्ति।

—आवश्यक निर्युक्ति

(ख) पढमसिद्धोत्ति काऊण खीरोदे छूढा।

—आवश्यक चूर्णि० पृ० १८१

(ग) एतस्यामवसर्पिण्या, सिद्धोऽसौ प्रथमस्ततः।
सत्कृत्य तद्वपु. क्षीरनीरधौ निदधेऽमरै ॥

—त्रिषष्ठि० १।३।५३१

१७३ सव्वजग जीवरक्खणदयट्ठयाए पावयण भगवया सुकहिय।

—प्रश्नव्याकरण, सम्वरद्वार।

१७४. धम्माणं कासवो मुह।

—उत्तराध्ययन, गा० १६ अ० २५

को दस प्रकार के धर्म का प्रवर्तक माना है।[175] भागवतकार ने उनका अवतार ही मोक्षधर्म का उपदेश देने के लिए माना है।[176]

भारतीय साहित्य में फाल्गुन कृष्णा एकादशी का दिन स्वर्णाक्षरों में उट्टङ्कित है जिस दिन सर्व प्रथम भगवान् का आध्यात्मिक प्रवचन भावुक भक्तों को श्रवण करने को प्राप्त हुआ।[177] भगवान् ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की गम्भीर मीमांसा करते हुए मानवजीवन के लक्ष्य पर प्रकाश डालते हुए कहा—जीवन का लक्ष्य भोग नहीं, त्याग है, राग नहीं, वैराग्य है, वासना नहीं साधना है। इस प्रकार भगवान् के अध्यात्म रस में छलछलाते हुए प्रवचन को श्रवण कर सम्राट् भरत के पाँचसौ पुत्र व सातसौ पौत्रों ने तथा 'ब्राह्मी' आदि ने प्रव्रज्या ग्रहण की।[178]

---

१७५ इह हि इक्ष्वाकुकुलवंशोद्भवेन नाभिसुतेन मरुदेव्या नन्दनेन [illegible] ऋषभेण दस प्रकारो धर्मः स्वयमेव चीर्णः।

— ब्रह्माण्डपुराण

१७६ तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया।

—भागवत ११।२।१६।पृ० ७११

१७७ फग्गुणबहुले एक्कारसीइ अह अट्ठमेण भत्तेण।
उप्पन्नंमि अणंते महव्वया पंच पन्नवए॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३४०

(ख) [illegible]

— [illegible]

१७८ [illegible]

— [illegible]

कितने ही आचार्यो का यह अभिमत है कि भगवान् के शब्द कर्णकुहरो मे गिरने से उन्हे आत्मज्ञान हुआ और वे मुक्त हो गई।[१७१] प्रस्तुत अवसर्पिणी में सर्वप्रथम केवलज्ञान श्री ऋषभदेव को हुआ और मोक्ष मरुदेवी माता को।[१७२]

आचार्य जिनसेन ने स्त्रीमुक्ति न मानने के कारण ही प्रस्तुत घटना का उल्लेख नही किया है।

धर्मचक्रवर्ती

जिन बनने के पश्चात् भगवान् श्री ऋषभदेव स्वय कृतकृत्य हो चुके थे। वे चाहते तो एकान्त शान्त स्थान मे अपना शेष जीवन व्यतीत करते, पर वे महापुरुष थे। उन्होने समस्त प्राणियो की रक्षारूप दया के पवित्र उद्देश्य से प्रवचन किया।[१७३] एतदर्थ ही भगवान् श्री महावीर ने अपने अन्तिम प्रवचन मे श्री ऋषभदेव को धर्म का मुख कहा है।[१७४] और ब्रह्माण्ड पुराण मे भी श्री ऋषभदेव

---

१७१. अन्ने भणति—भगवओ धम्मकहासद्द सुणेंतीए तक्काल च तीए खुट्टमाउय ततो सिद्धा।

—आवश्यक मलय० वृ० २२६

१७२ मउय मयस्स देहो त
मरुदेवीए पढमसिद्धोत्ति।

—आवश्यक निर्युक्ति

(ख) पढमसिद्धोत्ति काऊण खीरोदे छूढा।

—आवश्यक चूर्णि० पृ० १८१

(ग) एतस्यामवसर्पिण्या, सिद्धोऽसौ प्रथमस्तत।
सत्कृत्य तद्वपु क्षीरनीरधौ निदधेऽमरै॥

—त्रिषष्टि० १।३।५३१

१७३ सव्वजग जीवरक्खणदयट्ठयाए पावयण भगवया सुकहियं।

—प्रश्नव्याकरण, सम्वरद्वार।

१७४. धम्माण कासवो मुह।

—उत्तराध्ययन, गा० १६ अ० २५

को दस प्रकार के धर्म का प्रवर्तक माना है।[175] भागवतकार ने उनका अवतार ही मोक्षधर्म का उपदेश देने के लिए माना है।[176]

भारतीय साहित्य में फाल्गुन कृष्णा एकादशी का दिन स्वर्णाक्षरों में उट्टङ्कित है जिस दिन सर्व प्रथम भगवान् का आध्यात्मिक प्रवचन भावुक भक्तों को श्रवण करने को प्राप्त हुआ।[177] भगवान् ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की गम्भीर मीमांसा करते हुए मानवजीवन के लक्ष्य पर प्रकाश डालते हुए कहा— जीवन का लक्ष्य भोग नहीं, त्याग है, राग नहीं, वैराग्य है, वासना नहीं साधना है। इस प्रकार भगवान् के अन्तस्तल से छलछलाते हुए प्रवचन को श्रवण कर सम्राट् भरत के पाँचसौ पुत्र व सातसौ पौत्रों ने तथा 'ब्राह्मी' आदि ने प्रव्रज्या ग्रहण की।[178]

---

१७५ इह हि इक्ष्वाकुकुलवंशोद्भवेन नाभिसुतेन मरुदेव्या नन्दनेन महादेवेन ऋषभेण दश प्रकारो धर्मः स्वयमेव चीर्णः।

— ब्रह्माण्डपुराण

१७६ तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया।

— भागवत ११।२।१६।पृ० ७११

१७७ फग्गुणबहुले इक्कारसीइ अह अट्ठमेण भत्तेण।
उप्पन्नंमि अणंते महव्वया पंच पन्नवए॥

— आवश्यक निर्युक्ति गा० ३४०

(ख) [illegible]

— [illegible], पृ० [illegible]

१७८ [illegible]

— [illegible]

सम्राट् भरत आदि ने श्रावक व्रत ग्रहण किये और सुन्दरी ने भी।[१७९]

महापुराणकार ने भरत के स्थान पर श्रावक का नाम 'श्रुतकीर्ति' दिया है और सुन्दरी के स्थान पर श्राविका का नाम "प्रियव्रता" दिया है।[१८०] पर श्वेताम्बर ग्रन्थों मे ये नाम कही पर भी नही आये हैं। इस प्रकार श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ की संस्थापना कर वे सर्वप्रथम तीर्थङ्कर बने।

श्रमणो के लिए पाँच महाव्रतो[१८१] का और गृहस्थो के लिए

(ख) तत्थ उसभसेणो णाम भरहस्स पुत्तो सो धम्मं सोऊण पव्वइतो, तेण तिहिं पुच्छाहि चोद्दसपुव्वाइ गहिताइ—उप्पन्ने विगते धुते, तत्थ बम्भीवि पव्वइया।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १८२

(ग) महापुराण पर्व० २४, श्लोक १७५, पृ० ५६१

१७९ (क) भरहो सावओ, सुन्दरीए ण दिन्न पव्वइउ, मम इत्थिरयण एसत्ति, सा साविगा, एस चउव्विहो समणसघो।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १८२

(ख) भरहो सावगो जाओ, सुन्दरी पव्वयन्ती भरहेण इत्थीरयण भविस्सइत्ति निरुद्धा साविया जाया, एस चउव्विहो समणसघो।

—आवश्यक मल० वृ० प० २२९

१८०. श्रुतकीर्तिर्महाप्राज्ञो गृहीतोपासकव्रत.।
देशसंयमिनामासीद्धौरेयो गृहमेधिनाम् ॥
उपात्ताणुव्रता धीरा प्रयतात्मा प्रियव्रता।
स्त्रीणा विशुद्धवृत्तीनां बभूवाग्रेसरी सती ॥

—महापुराण जिनसेन २४।१७७-१७८ पृ० ५६२

१८१. अहिंससच्च च अतेणगं च,
तत्तो य बम्भं च अपरिग्गहं च।
पडिवज्जिया पच महव्वयाइं,
चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विऊ ॥

—उत्तराध्ययन २१।१२

द्वादश व्रतों का निरूपण किया।[182] मर्यादित विरति अणुव्रत और पूर्ण विरति महाव्रत है।[183]

भगवान् के प्रथम गणधर ऋषभसेन हुए।[184] श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार वे सम्राट् भरत के पुत्र थे[185] और दिगम्बर ग्रन्थों के अनुसार वे भगवान् श्री ऋषभदेव के पुत्र थे।[186] श्री समयसुन्दर जी

(ग) आवश्यक नियुक्ति गा० ३४० ।

१८२ देखिए उपासक दशांग में द्वादश व्रतों का निरूपण ।

(ख) तत्त्वार्थ सूत्र में भी ।

१८३. देशतो हिंसादिभ्यो विरतिरणुव्रतं सर्वतो विरतिर्महाव्रतमिति ।

—तत्त्वार्थ ७।२ भाष्य

१८४ उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स उसभसेणपामोक्खाओ चउरासीइ समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था ।

— कल्पसूत्र सू० १९७ पृ० ५८ पुण्य०

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति

(ग) समवायाङ्ग १५८ गा० ३६–४१

(घ) त्रिषष्टि० १।३

(ङ) [illegible]

—कल्पार्थबोधिनी पृ० १५१

(च) कल्पसुबोधिका विनय० पृ० ४१२

१८५ [illegible]

—[illegible] पृ० २६६

१८६ [illegible]

—[illegible]

ने कल्पलता[१८७] मे और लक्ष्मीवल्लभ जी ने कल्पद्रुम कलिका[१८८] मे ऋषभसेन के स्थान पर पुण्डरीक नाम दिया है किन्तु जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, समवायाङ्ग, कल्पसूत्र, आवश्यक मलयगिरीय वृत्ति, त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र प्रभृति ग्रन्थो मे प्रथम गणधर का नाम पुण्डरीक नही, ऋषभसेन ही दिया है।[१८९] यहाँ तक कि समयसुन्दर जी व लक्ष्मीवल्लभ जी ने भी कल्पसूत्र के मूल मे ऋषभसेन नाम ही रक्खा है। हमारी दृष्टि से भगवान् श्री ऋषभदेव के चौरासी गणधर थे उनमे से एक गणधर का नाम पुण्डरीक था, जो भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् भी संघ का कुशल नेतृत्व करते रहे थे। सम्भव है इसी कारण समयसुन्दर जी व लक्ष्मीवल्लभ जी को भ्रम हो गया और उन्होने टीकाओ मे ऋषभसेन के स्थान पर पुण्डरीक नाम दिया, जो अनागमिक है।

उत्तराधिकारी

हाँ, तो प्रथम गणधर ऋषभसेन को ही भगवान् ने आत्म-विद्या का परिज्ञान कराया। वैदिक परम्परा से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि आत्म-विद्या क्षत्रियो के अधीन रही है। पुराणो की दृष्टि से भी क्षत्रियो के पूर्वज भगवान् श्री ऋषभदेव ही हैं।[१९०]

---

१८७ तेषां मध्यात् पुण्डरीकादय चतुरशीतिगणधरा जाता.

—कल्पलता—पृ० २०७

१८८. तत्र पुण्डरीक प्रथमो गणभृत् स्थापित

—कल्पद्रुम कलिका पृ० १७१

१८९. देखिए १८४ न० का टिप्पण

१९०. ऋषभ पार्थिव—श्रेष्ठ सर्व-क्षत्रस्य पूर्वजम् ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीर पुत्र-शताग्रज ॥

—ब्रह्माण्ड पुराण, पूर्वार्ध छनुषगपाद अध्या० १४ श्लो० ६०

(ख) नाभिस्त्वजनयत्पुत्र मरुदेव्यां महाद्युतिः ।
ऋषभ पार्थिव-श्रेष्ठ सर्व-क्षत्रस्य पूर्वजम् ॥

—वायुमहापुराण, पूर्वार्ध अध्या० ३३, श्लो० ५०

वे मोक्षमार्ग के प्रवर्तक अवतार है।[१९१] जैन साहित्य में जिन ऋषभसेन को ज्येष्ठ गणधर कहा है, सम्भव है, वैदिक साहित्य में उसे ही मानसपुत्र और ज्येष्ठपुत्र अथर्वा कहा हो। उन्हें ही भगवान् ने समस्त विद्याओं मे प्रधान ब्रह्मविद्या देकर लोक मे अपना उत्तराधिकारी बनाया है।[१९२]

आद्य परिव्राजक मरीचि

भगवान् के केवल ज्ञान की तथा तीर्थ-प्रवर्तन की सूचना प्राप्त होते ही, भगवान् के साथ जिन चार सहस्र व्यक्तियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी और जो क्षुधा पिपासा से पीडित होकर तापस आदि हो गये थे, उन तापसों में से कच्छ महाकच्छ को छोड़कर सभी भगवान् के पास आते हैं और आर्हती प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं।[१९३]

---

१९१. तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ।
अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद् ब्रह्मपारगम् ॥

—श्रीमद्भागवत ११।२।१६ गीता प्रेस गो० [illegible]

१९२. ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।

—मुण्डकोपनिषद् १।१

(ख) [illegible]

—[illegible] १, ६८ [illegible]

१९३. [illegible]

—[illegible]

(ख) [illegible]

[illegible]

[illegible]

आवश्यकनिर्युक्ति,[१९४] आवश्यक चूर्णि, आवश्यक मलयगिरीय वृत्ति,[१९५] आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति[१९६] त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र,[१९७] कल्पलता,[१९८] कल्पद्रुम कलिका,[१९९] महावीरचरियं[२००] प्रभृति श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार भगवान् के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर सम्राट् भरत का पुत्र मरीचि भगवान् ऋषभदेव के पास दीक्षित होता

(ग) येऽपि च तापसा कच्छ-
महाकच्छविवर्जिता ।
तेऽपि प्रपेदिरे दीक्षा
समेत्य स्वामिनोऽन्तिके ॥
—कल्पार्थ-बोधिनी पृ० १५१

१९४ दट्ठूण कीरमाणिं महिमं देवेहि खत्तिओ मरिई ।
सम्मत्तलद्धबुद्धी धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥
—आव० नि० गा० ३४७

१९५ एत्थ समोसरणे मरिचिमाइया बहवे कुमारा पव्वइया,
—आवश्यक मल० वृ० पृ० २३०।१

१९६. आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति

१९७ आद्ये समवसरणे ऋषभस्वामिनः प्रभोः ।
पितृभ्रात्रादिभिः सार्धं मरीचिः क्षत्रियो ययौ ॥
महिमानं प्रभोः प्रेक्ष्य क्रियमाणं सः नाकिभिः ।
धर्मं चाकर्ण्य सम्यक्त्वलब्धधीर्व्रतमाददे ॥
—त्रिषष्ठि० १।१।२२-२३

१९८ तत्र भरतस्य मरीचिप्रमुखाः पञ्चशतपुत्राः
सप्तशतपौत्राश्च प्रतिबुद्धा दीक्षा जगृहुः ।
—कल्पलता—पृ० २०७

१९९. तत्र प्रथमदेशनायां धर्मं श्रुत्वा पञ्चशत भरतस्य पुत्राः, सप्तशत भरतस्य पौत्राः प्रतिबोधं प्रापुः, द्वादशशतकुमारैर्दीक्षा गृहीता ''
द्वादशशतकुमारेषु मरीचिरपि दीक्षित आसीत् ।
—कल्पद्रुम कलिका—पृ० १५१

२००. पियामहस्स पासे पव्वइओत्ति ।
—महावीर चरियं, गुणचन्द्राचार्य पत्र ११

श्रमण द्रव्य और भाव से मुण्डित होते है, सर्व प्राणातिपात-विरमण महाव्रत के धारक होते हैं, पर मैं शिखासहित क्षुरमुण्डन कराऊँगा और स्थूलप्राणातिपात का विरमण करूँगा।[२०७]

श्रमण अकिंचन तथा शील की सौरभ से सुरभित होते हैं, पर मैं परिग्रहधारी रहूँगा और शील की सौरभ के अभाव में चन्दनादि की सुगन्ध से सुगन्धित रहूँगा।[२०८]

श्रमण निर्मोह होते हैं, पर मैं मोह ममता के मरुस्थल मे घूम रहा हूँ, उसके प्रतीक के रूप मे छत्र धारण करूँगा। श्रमण नगे पैर होते हैं, पर मैं उपानद् पहनूँगा।[२०९]

श्रमण जो स्थविर कल्पी है वे श्वेतवस्त्र के धारक हैं और जिन-कल्पी निर्वस्त्र होते है, पर मैं कषाय से कलुषित हूँ, अत काषाय वस्त्र धारण करूँगा।[२१०]

(ख) त्रिषष्ठि० १।६।१५ प० १५०

२०७ लोइ दियमु डा सजया उ अहय खुरेण ससिहो अ।
थूलगपाणिवहाओ, वेरमण मे सया होउ ॥
—आव० नि० गा० ३५८ म० वृ० २३३।

(ख) अमी मुण्डा शिर केशलुञ्चनेन्द्रियनिर्जयै।
अह पुनर्भविष्यामि क्षुरमुण्डशिखावर ॥
त्रिषष्ठि० १।६।१६। प० १५०

२०८ निक्किचणा य समणा अकिचणा मज्झ किचण होउ।
सीलसुगधा समणा अहय सीलेण दुग्गधो ॥
—आव० नियुक्ति० गा० ३५५

(ख) त्रिषष्ठि० १।६।१६।१५०।१

२०९ ववगयमोहा समणा मोहाच्छन्नस्स छत्तय होउ।
अणुवाणहा य समणा मज्झ तु उवाहणो हु तु ॥
—आव० नियुक्ति० गा० ३५६

(ख) त्रिषष्ठि० १।६।२०।१५०।१

२१० सुक्कवरा य समणा निरवरा मज्झ धाउरत्ताइ।
हु तु इमे वत्थाइ, अरिहो मि कसायकलुसमई ॥
—आवश्यक नियुक्ति० गा० ३५७

श्रमण पापभीरु और जीवों की घात करने वाले आरंभादि से मुक्त होते हैं। वे सचित्त जल का प्रयोग नहीं करते हैं। पर मैं वैसा नहीं हूँ, अत स्नान तथा पीने के लिए परिमित जल ग्रहण करूँगा।[211]

इस प्रकार उसने अपनी कल्पना से परिकल्पित परिव्राजक-परिधान का निर्माण किया[212] और भगवान् के साथ ही ग्राम नगर आदि में विचरने लगा।[213] भगवान् के श्रमणों से मरीचि की पृथक् वेश-भूषा को निहारकर जन-जन के अन्तर्मानस में कुतूहल उत्पन्न होता। लोग जिज्ञासु बनकर उसके पास पहुँचते।[214] मरीचि अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा की तेजस्विता से प्रतिबोध देकर उन्हें भगवान् के शिष्य बनाता[215]

एक समय सम्राट् भरत ने भगवान् श्री ऋषभदेव के समक्ष

(ग) त्रिषष्टि० १।६।२१।१४०।१

२११. वज्जंतउदगसमारंभं, बहुजीवसमाउलं च आरंभं।
होउ मम परिमिएणं, जलेण ण्हाणं च पियणं च॥

—आवश्यक नि० गा० ३५८

(ग) त्रिषष्टि० १।६।२१।१४०।१।

२१२. एय सो रुइयमई [illegible] लिंगं [illegible]।

—आव० नि० गा० ३५६

(ग) स्वबुद्धया परिकल्प्यैवं मरीचिर्लिङ्गमात्मन।

—त्रिषष्टि० १।६।२।१५१।१

२१३ गामनगराइएसु, विहरइ सो सामिणा सद्धिं।

—आवश्यक नियुक्ति [illegible] गा० ३६४

२१४ अह तं पागडरूवं दट्ठु पुच्छेइ बहुजणो धम्मं।
कहइ जईणं तो सो वियालणे तस्स परिकहणा॥

—आवश्यक नि० [illegible] गा० ३८८

२१५. धम्मकहाअक्खित्ते उवट्ठिए देइ भगवओ सीसे।

—आवश्यक नियुक्ति ३६०

जिज्ञासा प्रस्तुत की—कि प्रभो ! क्या इस परिषद् में ऐसा कोई व्यक्ति है जो आपके सदृश ही भरत क्षेत्र मे तीर्थ कर बनेगा ?[२१६]

जिज्ञासा का समाधान करते हुए भगवान् ने कहा—स्वाध्याय ध्यान मे आत्मा को ध्याता हुआ तुम्हारा पुत्र मरीचि परिव्राजक "वीर" नामक अन्तिम तीर्थङ्कर बनेगा। उससे पूर्व वह पोतनपुर का अधिपति त्रिपृष्ठ वासुदेव होगा, तथा विदेह क्षेत्र की मूका नगरी मे प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती होगा। इस प्रकार तीन विशिष्ट उपाधियो को वह अकेला ही प्राप्त करेगा।[२१७]

---

२१६. पुणरवि अ समोसरणे, पुच्छीअ जिएा तु चक्किणो भरहे।
अण्णुट्ठो अ दसारे तित्थयरो को इहं भरहे ? ।।
—आवश्यक नियुक्ति० गा० ३६७

(ख) अह भणइ नरवरिंदो ताय ! इमीमित्तिआइ परिसाए।
अन्नोऽवि कोऽवि होही भरहे वासम्मि तित्थयरो ?
—आवश्यक मूलभाष्य गा० ४४ मल० वृ० पृ० २४३

(ग) भगव ! किमेत्थ कोऽवि हु पाविस्सइ तित्थयरलाभ ?
—महावीर चरिय, गुणचन्द्र, गा० १२४ प्र० २ प० १८

२१७ तत्थ मरीई नामा आइपरिव्वायगो उसभनत्ता।
सज्झायज्झाणजुओ एगन्ते झायइ महप्पा ।।
त दाएइ जिणिन्दो एव नरिदेण पुच्छिओ सन्तो।
धम्मवरचक्कवट्टी अपच्छिमो वीरनामुत्ति ।।
तथा—आइगरु दसाराण तिविट्ठु नामेण पोअणाहिवई।
पियमित्तचक्कवट्टी मूआइ विदेहवासम्मि ।।
—आवश्यक नि० गा० ४२२ से ४२४ प० २४४

(ख) ताहे खत्तियकुलिग मिरिइ एगंतमट्ठिय सयय।
दावइ जह एस जिणो चरिमो होही तुह सुओत्ति ।।
एसोच्चिय नागागरनगरसमिद्धम्मि भारहद्धम्मि।
सामी तिविट्ठुनामो पढमो तह वासुदेवाण ।।
एसो महाविदेहे पियमित्तो नाम चक्कवट्टीवि।
मूयाए नयरीए भविस्सई परमरिद्धिजुओ।
—महावीर चरियं, गा० १२६ से १२८ प० १८।१

भगवान् श्री ऋषभदेव की भविष्य वाणी को श्रवण कर सम्राट् भरत भगवान् को वन्दन कर मरीचि परिव्राजक के पास पहुँचे, और भगवान् की भविष्यवाणी को सुनाते हुए उससे कहा—अयि मरीचि परिव्राजक ! तुम अन्तिम तीर्थङ्कर बनोगे, अतः मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ।[218] तुम वासुदेव व चक्रवर्ती भी बनोगे।"

यह सुनकर मरीचि के हृत्तंत्री के तार झनझना उठे—मैं वासुदेव, चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर बनूँगा।[219] मेरे पिता चक्रवर्ती हैं, मेरे पितामह तीर्थङ्कर हैं और मैं अकेला ही तीन पदवियों को धारण करूँगा।[220] मेरा कुल कितना उत्तम है !

एक दिन मरीचि का स्वास्थ्य बिगड़ गया। सेवा करने वाले के अभाव में मरीचि के मानस में ये विचार उद्बुद्ध हुए कि मैंने अनेकों को उपदेश देकर भगवान् के शिष्य बनाये, पर आज मैं स्वयं सेवा करने वाले से वंचित हूँ। अब स्वस्थ होने पर मैं स्वयं अपना शिष्य

(ख) त्रिषष्टि १।६।३७२ से ३७८ पृ० १६६।

२१८. नाहं च ते पारिव्वज्जं वंदामि अहं इमं च ते जम्मं।
जं होहिसि तित्थयरो अपच्छिमो तेण वंदामि॥

—आव० नि० गा० ४२८ प० २४४

(ग) महावीर चरियं गा० [illegible] से [illegible] प० [illegible]।

२१९. अहं वासुदेव पढमो मूआइ विदेह चक्कवट्टी।
चरिमो तित्थयराणं होउ अलं इत्तिअ मज्झ॥

—आव० नि० गा० ४२९, प० २४५

२२०. पढमो वासुदेवाणं पिआ मे चक्कवट्टीणं।
अज्जो तित्थयराणं अहो कुलं उत्तमं मज्झ॥

—आव० नि० गा० ४३१ [illegible]

(ख) [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

—त्रिषष्टि० १।६।३८५-३८७

बनाऊँगा ।[२२१] वह स्वस्थ हुआ । कपिल राजकुमार धर्म की जिज्ञासा से उसके पास आया । उसने आर्हती दीक्षा की प्रेरणा दी । कपिल ने प्रश्न किया "आप स्वयं आर्हत धर्म का पालन क्यो नही करते ?" उत्तर मे मरीचि ने कहा—"मै उसे पालन करने मे समर्थ नही हूँ ।" कपिल ने पुन प्रश्न किया—क्या आप जिस मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं उसमे धर्म नही है ?" इस प्रश्न ने मरीचि के मानस मे तूफान पैदा कर दिया और उसने कहा—"यहाँ पर भी वही है जो जिन धर्म मे है ।"[२२२] कपिल उसी का शिष्य बना ।

---

२२१. अन्यदा स ग्लान सवृत्त साधवोऽप्यसयतत्त्वान्न प्रतिजाग्रति । स चिन्तयति—निष्ठितार्था. खल्वेने, नामयतस्य कुर्वन्ति, नापि ममैतान् कारयितु युज्यते, तस्मात्कचन प्रतिजागरक दीक्षयामीति ।

—आव० मल० वृ० प० २४७।१

(ख) त्रिषष्ठि १।६।२६-३२ पृ० १५० ।

(ग) महावीर चरियं, गुण० ६।२६-३२

२२२ अपगतरोगस्य च कपिलो नाम राजपुत्रो धर्म्मशुश्रूषया तदन्तिकमागत इति, कथिते साधुधर्म्मे स आह—यद्यय मार्ग किमिति भवतैतदङ्गीकृत ? मरीचिराह—पापोऽहं "लोए इदियें" त्यादि विभाषा पूर्ववत्, कपिलोऽपि कर्मोदयात् साधुधर्म्मानभिमुख. खल्वाह—तथापि कि भवद्दर्शने नास्त्येव धर्म्म इति ? मरीचिरपि प्रचुरकर्म्मा खल्वय न तीर्थकरोक्त प्रतिपद्यते, वर मे सहाय. सवृत्त इति सञ्चिन्त्याह—'कविला एत्थ पि' त्ति.... ।

—आवश्यक नियुक्ति मलय० वृ० प० २४७।१

(ख) मरीचिमाचख्यौ भूय स इत्यूचे च कि तव ?
योऽपि सोऽपि न धर्मोऽस्ति, निर्धर्मं किं व्रतं भवेत् ?

—त्रिषष्टि० १।६।४८

(ग) कविलेण वुत्त—भयव ! तुम्ह मतिए एत्थ तहावि अत्थि कि पि णिज्जराठाण न वा ! मिरिइणा भणिय—भद्द ! समणधम्मे ताय अत्थि, इहावि मणाग ति ।

—महावीर चरियं० गुण० प० ३२

दिगम्बराचार्य जिनसेन और आचार्य सकलकीर्ति के मन्तव्यानुसार जिन चार सहस्र राजाओं ने भगवान् के साथ दीक्षा ग्रहण की थी, उनके साथ ही मरीचि ने भी दीक्षा ली थी।[223] और वह भी उन राजाओ के समान ही क्षुधा-पिपासा से व्याकुल होकर परिव्राजक हो गया था।[224] मरीचि के अतिरिक्त सभी परिव्राजको के आराध्यदेव श्री ऋषभदेव ही थे।[225] भगवान् को केवल ज्ञान होने पर मरीचि को को छोडकर अन्य सभी भ्रष्ट बने हुए साधक तत्त्वो का यथार्थ स्वरूप समझकर पुन: दीक्षित बने।[226]

जैन साहित्य की दृष्टि से मरीचि 'आदि परिव्राजक' था।[227]

(घ) गेलन्नेऽपडियरण कविला ! इत्थपि इहयपि ।

—आवश्यक नि० गा० ४३७

२२३ (क) स्वपितामहनन्त्यागे स्वयञ्च गुरुभक्तितः ।
राजभि सह कच्छाद्यैः परित्यक्तपरिग्रह ॥

—उत्तरपुराण, श्लो० ७२ स० ५४, पृ० ४४६

(ख) महावीर पुराण—आचार्य सकल कीर्त्ति पृ० ६ ।

२२४ मरीचिश्च गुरोर्नप्ता, परिव्राड्भूयमास्थितः ।
मिथ्यात्ववृद्धिमकरोद् अपसिद्धान्तभाषितैः ॥

—महापुराण जिन० प० १८, श्लो० ६१ पृ० ४०३

२२५. न देवतान्तरं तेषाम् आसीन्मुक्त्वा स्वयंभुवम् ।

—महा० जिन० १८।६०।४०२

२२६ मरीचिवर्ज्याः सर्वेऽपि तापसास्तपसि स्थिताः ।
भट्टारकान्ते सम्बुद्ध्य महाप्राव्राज्यमास्थिता ॥

—महापुराण जिन० २४।१८२।५६२

२२७. आसीत् भगवानेवं, य एष तव नन्दनः ।
मरीचिर्नामधेयेन परिव्राजक आदिम ॥

—त्रिषष्ठि० १।६।३७२

(ख) तदीप्सयत् स कपिलं स्वसहायं चकार च ।
परिव्राजकपाखण्ड, तत प्रभृति चाऽभवत् ॥

—त्रिषष्ठि० १।६।५२

कपिल जैसे शिष्य को प्राप्तकर उसका उत्साह बढ गया। उसने तथा उसके शिष्य कपिल ने योगशास्त्र और सांख्य शास्त्र का प्रवर्तन किया।[२२८]

मरीचि और कपिल का वर्णन जैसा जैन साहित्य मे उट्टङ्कित है वैसा भागवत आदि वैदिक साहित्य मे नही। जहाँ जैन साहित्य मे मरीचि को भरत का पुत्र माना है वहाँ भागवतकार ने भरत की वंश परम्परा का वर्णन करते हुए उसे अनेक पीढियो के पश्चात् "सम्राट्" का पुत्र बताया है तथा उसकी माँ का नाम "उत्कला" दिया है।[२२९]

जैन साहित्य मे कपिल को राजपुत्र बताया है और वैदिक साहित्य मे उसे कर्दम ऋषि का पुत्र बताया है। साथ ही उन्हे विष्णु का पाँचवाँ अवतार भी माना है।[२३०]

जब कपिल कर्दम ऋषि के यहाँ जन्म ग्रहण करता है तब ब्रह्मा जी मरीचि आदि मुनियो के साथ कर्दम के आश्रम मे

---

२२८ (क) स प्राग्जन्मावधेर्ज्ञात्वा, मोहादभ्येत्य भूतले।
स्वयं कृत साख्यमतमासूर्यादीनबोधयत् ॥
तदाम्नायादत्र साख्य प्रावर्तत च दर्शनम्।
सुखसाध्ये ह्यनुष्ठाने प्रायो लोक प्रवर्तते ॥
त्रिषष्टि० १०।१।७३-७४

(ख) तदुपज्ञमभूद् योगशास्त्र तन्त्र च कापिलम्।
येनाय मोहितो लोक सम्यग्ज्ञानपराङ्मुख ॥
—महापुराण १८।६२।८०३

२२९ तत उत्कलाया मरीचिर्मरीचेर्बिन्दु....।
—भागवत ५।१५।१५।६०६

२३०. पचम कपिलो नाम सिद्धेश कालविप्लुतम्।
प्रोवाचासुरये साख्य तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥
—भागवत स्कन्ध १, अ० ३० श्लो० १० पृ० ५३

पहुँचते है[231] और यह प्रेरणा देते हैं कि वे अपनी कन्याएँ मरीचि आदि मुनियो को समर्पित करें।[232] ब्रह्मा की प्रेरणा से कर्दम ऋषि ने 'कला' नामक कन्या का मरीचि के साथ पाणिग्रहण करवाया।[233] इस प्रकार स्पष्ट है कि मरीचि कपिल के बहनोई थे। पर प्रश्न है कि भागवतकार ने एक ओर ऋषभ को आठवाँ अवतार माना है और कपिल को पाँचवाँ और कपिल तथा मरीचि का समय एक ही बताया गया है। श्रीमद्भागवत की दृष्टि से मरीचि भरत की अनेक पीढियो के बाद आते है तो पूर्व मे होने वाले को आठवाँ अवतार और पश्चात् होने वाले को पाँचवाँ अवतार कैसे माना गया ?

हमारी दृष्टि से भागवत मे अवतारो का जो निरूपण किया गया है, वह न क्रमबद्ध है और न संगत ही है।

जैन-साहित्य मे मरीचि परिव्राजक के आचारशैथिल्य का वर्णन तो है, पर भागवत की तरह उनके विवाह का उल्लेख नही है।

वैदिक साहित्य के परिशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि मरीचि श्री ऋषभ के अनुयायी थे। ऋग्वेद[234] मे काश्यपगोत्री

---

२३१. तत्कर्दमाश्रमपद सरस्वत्या परिश्रितम्।
स्वयम्भू साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरन्ययान्॥
श्रीमद्भागवत स्कध ३, अ० २४, श्लो० ६ पृ० ३१५

२३२. अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशील यथारुचि।
आत्मजाः परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि॥
—भागवत ३।२४।१५।३१६

२३३. गते शतधृतौ क्षत्त. कर्दमस्तेन चोदित।
यथोदित स्वदुहित प्रादाद्विश्वसृजा तत॥
मरीचये कला प्रादादनसूयामथात्रये।
श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत्पुलस्त्याय हविर्भुवन्॥
—भागवत ३।२४।२१-२२।३१७

२३४. ऋग्वेद १।६

मरीचिपुत्र ने अग्निदेव के प्रतीक के रूप मे जो ऋषभदेव की स्तुति की है वह हमारे मन्तव्यानुसार वही मरीचि है जिनका प्रस्तुत इतिवृत्त से सम्बन्ध है।

सुन्दरी का संयम

भगवान् श्री ऋषभ के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर ही सुन्दरी संयम ग्रहण करना चाहती थी। उसने यह भव्य-भावना अभिव्यक्त भी की थी किन्तु सम्राट् भरत के द्वारा आज्ञा प्राप्त न होने से वह श्राविका बनी।[२३५] परन्तु उसके अन्तर्मानस मे वैराग्य का पयोधि उछाले मार रहा था, वह तन से गृहस्थाश्रम मे थी किन्तु उसका मन सयम मे रम रहा था। षट् खण्ड पर विजय वैजयन्ती फहराकर और सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक अखण्ड शासन प्रदान कर जब सम्राट् भरत दीर्घकाल के पश्चात् "विनीता" लौटे तब सुन्दरी के कृश तनु को देखकर वे चकित रह गये।[२३६]

---

२३५. सुन्दरी पव्वयंती भरहेण इत्थीरयण भविस्सइत्ति निरुद्धा साविया जाया।

—आवश्यक मलयगिराय वृत्ति, पृ० २२६

(ख) विमुक्ता बाहुबलिना, जिघृक्षु सुन्दरी व्रतम्।
भरतेन निषिद्धा तु, श्राविका प्रथमाऽभवत्॥

—त्रिषष्टि० प० १। स० ३। प० ६५१

(ग) कल्प सुबोधिका टीका पृ० ५१२, साग० स०।

(घ) कल्पलता—समय सुन्दर पृ० २०७।

(ङ) कल्पद्रुम कलिका पृ० १५१।

२३६. एव जाहे बारस वरिसाणि महारायाभिसेगो वत्तो, रायाणो विसज्जिता ताहे णियगवग्ग सारिउमारद्धो, ताहे दाइज्जति सव्वे णियलग्गा एवं पडिवाडिए सुन्दरी दाइता, सा पण्डुल्लुक्कमुही, सा य जद्दिवस रुद्धा चेव तद्दिवसमारद्धा चेव आयबिलाणि करेति, त पासित्ता रुट्ठो ते कोडुबिये भणति.... ...।

—आवस्यक चूर्णि, पृ० २०६

अनुचरो को फटकारते हुए उन्होने कहा—ज्ञात होता है कि मेरे जाने के पश्चात् तुम लोगो ने सुन्दरी की कोई सुध-बुध नही ली है। क्या मेरे भोजनालय मे भोजन की कमी है, क्या वैद्य और औषधियो का अभाव है ?[२३७]

अनुचरो ने नम्र निवेदन करते हुए कहा—नाथ ! न भोजन की कमी है और न चिकित्सको का ही अभाव है, किन्तु जिस दिन से आपने सुन्दरी को सयम लेने का निषेध किया उसी दिन से ये निरन्तर आचाम्लव्रत कर रही है। हमारे द्वारा अनेक वार अभ्यर्थना करने पर भी ये प्रतिज्ञा से विचलित नहीं हुई हैं।[२३८]

(ख) षष्टि वर्षसहस्राणि, विरहाद् दर्शनोत्सुकान् ।
अदर्शयन् निजान् राज्ञो, नियुक्तपुरुषास्ततः ॥
ततः कृशा ग्रीष्मकालाक्रान्तामिव तरङ्गिणीम् ।
म्लानां हिमानीसम्पर्कवशादिव सरोजिनीम् ॥
प्रनष्टरूपलावण्या, हैमनेन्दुकलामिव ।
पाण्डुक्षामकपोला च रम्भा शुष्कदलामिव ॥
सोदरा बाहुवलिन सुन्दरी गुणसुन्दरः ।
नामग्राहं स्वपुरुषैर्दर्श्यमानां ददर्श सः ॥
तथाविधा च सम्प्रेक्ष्य ता परावर्त्तितामिव ।
सकोपमवनीपाल, स्वायुक्तानित्यवोचत ॥

—त्रिषष्टि १।४।७३० से ७३४

(ग) भारहवास अभिजिणिऊण अतिगओ विणीय रायहाणिति, ..
एव परिवाडीए सुन्दरी दाइया, सा पण्डुल्लुगितमुही जाया ।

—आवश्यक मलयगिरीय पृ० २३१।१

२३७. कि मम णत्थि ज एसा एरिसी रुवेण जाता ? वेज्जा वा नत्थि ?

— आवश्यक चूर्णि, पृ० २०६

२३८ किन्तु देवो यदाप्रभृति, दिग्जयाय तदाद्यसौ ।
आचामाम्लानि कुरुते, प्राणत्राणाय केवलम् ॥

सम्राट् भरत ने सुन्दरी से पूछा—सुन्दरी तुम सयम लेना चाहती हो या गृहस्थाश्रम मे रहना चाहती हो ? सुन्दरी ने सयम की भावना अभिव्यक्त की। सम्राट् भरत की आज्ञा से सुन्दरी ने श्री ऋषभदेव की आज्ञानुवर्तिनी ब्राह्मी के पास दीक्षा ली।[२३९] प्रस्तुत प्रसंग पर सहज ही ऋग्वेद के यमी सूक्त की स्मृति हो आती है। भाई यम से भगिनी यमी ने वरण करने की अभ्यर्थना की, पर भ्राता यम भगिनी की बात को स्वीकारता नही है। जबकि यहाँ भ्राता की अभ्यर्थना बहन ठुकराती है।+

आचार्य जिनसेन के अभिमतानुसार सुन्दरी ने प्रथम-प्रवचन को श्रवण कर ब्राह्मी के साथ ही दीक्षा ग्रहण की थी।[२४०]

अठानवें भ्राताओं की दीक्षा

यह बताया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव अपने सौ पुत्रों को पृथक्-पृथक् राज्य देकर श्रमण बने थे। सम्राट् भरत चक्रवर्ती बनना चाहते

तया यदेव देवेन, प्रव्रजन्ती न्यपिध्यत।
तत प्रभृत्यमौ तस्थौ, भावत सयतैव हि॥
—त्रिषष्टि १।४।८४५–८४६

(ख) तहि सिट्ठ-जहा आयबिलेण पारेति, ताहे तस्स पयणुरागो जाओ।
—आवश्यक चूर्णि, पृ० २०६

२३९ भणति-जदि ताव भजसि तो वच्चतु पव्वयतु, अह भोगट्ठी तो अच्छतु, ताहे पादेसु पडिता, विसज्जिया, पव्वइया।
—आवश्यकचूर्णि पृ० २०६

(ख) सा य भणिया जइ रुच्चति तो मए समं भोगे भुजाहि, ण वि तो पव्वयाहिति। ताहे पाएसु पडिया विसज्जिया पव्वइया।
—आवश्यक मूत्र मल० वृत्ति पृ० २३२।१

+ दर्शन अने चिन्तन, भ० ऋषभदेव अने तेमनो परिवार
—पृ० २३६-२३७ प० सुखलालजी

२४०. सुन्दरी चात्तनिर्वेदा ता ब्राह्मीमन्वदीक्षित।
—महापुराण पर्व २४ श्लो० १७७, पृ० ५८२

थे, अत षट्खण्ड को तो उन्होने जीत लिया था, पर अभी तक अपने भ्राताओ को अपना आज्ञानुवर्त्ती नही बना पाये थे , एतदर्थ अपने लघु भ्राताओ को अपने अधीन करने के लिए उन्होने दूत प्रेषित किये।[२४१] अठानवें भ्राताओ ने मिलकर इस विषय मे परस्पर परामर्श किया, परन्तु वे निर्णय पर नही पहुँच सके।[२४२] उस समय भगवान् श्री ऋषभदेव अष्टापद पर्वत पर विचर रहे थे। वे सभी भगवान् के पास पहुँचे।[२४३] स्थिति का परिचय कराते हुए नम्र निवेदन किया—प्रभो!

---

२४१. अन्नया भरहो तेसिं भातुगाण पत्थवेति, जहा मम रज्ज आयाणह,

—आवश्यकचूर्णि, पृ० २०६

(ख) अन्नया भरहो तेसिं भाउयाण दूय पट्ठवेइ, जहा-मम रज्ज आयाणह ,

—आवश्यक मल०, २३१।१

(ग) प्राहिणोत्स निसृष्टार्थान् दूताननुजसन्निधिम् ।

—महापुराण जिन० ३४।८६।१५६

२४२ ते भणति-अम्हवि रज्ज ताएण दिण्ण, तुज्झवि, एतु ताव ताओ पुच्छिज्जिहिति, ज भणिहिति त करीहामो,

—आवश्यक मल० वृत्ति० पृ० २३१।१

(ख) ते भणति-अम्हवि रज्ज ताएहि दिन्न तुज्झवि, एतु ता तातो ताहे पुच्छिज्जिहित्ति, ज भणिहीत्ति त काहामो ।

—आवश्यकचूर्णि, पृ० २०६

(ग) प्रत्यक्षो गुरुरस्माक प्रतपत्येष विश्वदृक् ।
स न प्रमाणमैश्वर्यं तद्वितीर्णमिद हि न ॥
तदत्र गुरुपादाज्ञा तन्त्रा न स्वैरिणो वयम् ।
न देय भरतेशेन नादेयमिह किञ्चन ॥

—महापुराण, जिन० ३४।९३–९४।१५६

२४३ आवश्यक चूर्णि पृ० २०६ ।

(ख) तेण समएण भयव अट्ठावयमागओ विहरमाणो तत्थ सव्वे समोसरिया कुमारा ।

—आवश्यक मल० वृत्ति, पृ० २३१।१

आपके द्वारा प्रदत्त राज्य पर भाई भरत ललचा रहा है। वह हम से राज्य छीनना चाहता है।[२४४] क्या बिना युद्ध किये हम उसे राज्य दे देवें ? यदि हम देते हैं तो उसकी साम्राज्य लिप्सा बढ जायेगी और हम पराधीनता के पंक मे डूब जायेंगे। भगवन् ! क्या निवेदन करे ? भरतेश्वर को स्वय के राज्य से सन्तोष नही हुआ तो उसने अन्य राज्यो को अपने अधीन किया किन्तु उसकी तृष्णा वडवाग्नि की तरह शान्त नही हो रही है। वह हमे आह्वान करता है कि या तो तुम मेरी अधीनता स्वीकार करो, या युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ। आपश्री के द्वारा दिये गये राज्य को हम क्लीव की तरह उसे कैसे अर्पित कर दे ? जिसे स्वाभिमान प्रिय नही है वही दूसरो की गुलामी करता है। और यदि हम राज्य के लिए अपने ज्येष्ठ भ्राता से युद्ध करते हे तो भ्रातृ-युद्ध की एक अनुचित परम्परा का श्रीगणेश हो जाता है, अत. आप ही बताएँ, हमे क्या करना चाहिए ?[२४५]

(ग) ते दूतानभिधायैव, तदैवाऽष्टापदाचले ।
स्थित समवसरणे, वृषभस्वामिन ययु ॥
—त्रिषष्ठि० १।४।८०८

२४४. ताहे भणति-तुब्भेहिं दिणाणि रज्जाइ हरति भाया ।
—आव० मल० वृ० पृ० २३१।

(ख) तदानिं तातपादैर्न सविभज्य पृथक्-पृथक् ।
देशराज्यानि दत्तानि, यथार्ह भरतस्य च ॥
तैरेव राज्यै सन्तुष्टास्तिष्ठामो विश्वेश्वर ! ।
विनीतानामलङ्घ्या हि मर्यादा स्वामिदर्शिता ॥
—त्रिषष्ठि १।४।८१६-८२०

२४५ (क) तो किं करेमो ? किं जुज्झामो उदाहु आयाणामो ?
—आवश्यक मल० वृ० पृ० २३१

(ख) आवश्यकचूर्णि, पृ० २०६।

(ग) स्वराज्येनाऽन्यराज्यैश्चाऽपहृतैर्भरतेश्वर. ।
न सन्तुष्यति भगवन् ! वडवाग्निरिवाऽम्बुभिः ॥
आच्छिन्दे यथाऽन्येषा राज्यानि पृथिवीभुजाम् ।
अस्माकमपि भरतस्तद्राज्यान्याच्छेतुमिच्छति ॥

भगवान् बोले—पुत्रो ! तुम्हारा चिन्तन ठीक है। युद्ध भी बुरा है और कायर बनना भी बुरा है। युद्ध इसलिए बुरा है कि उसके अन्त मे विजेता और पराजित दोनो को ही निराशा मिलती है। अपनी सत्ता को गँवाकर पराजित पछताता है और शत्रु बनाकर विजेता पछताता है। कायर बनने की भी मैं तुम्हे राय नही दे सकता, मै तुम्हे ऐसा राज्य देना चाहता हूँ, जो सहस्रो युद्धो से भी नही प्राप्त किया जा सकता।

भगवान् की आश्वासन-भरी वाणी को सुनकर सभी के मुख-कमल खिल उठे, मन-मयूर नाच उठे। वे अनिमेष दृष्टि से भगवान् को निहारने लगे, किन्तु भगवान् की भावना को छू नही सके। यह उनकी कल्पना मे नही आ सका कि भौतिक राज्य के अतिरिक्त भी कोई राज्य हो सकता है। वे भगवान् के द्वारा कहे गये राज्य को पाने के लिए व्यग्र हो गये। उनकी तीव्र लालसा को देखकर भगवान् बोले —

"भौतिक राज्य से आध्यात्मिक राज्य महान् है,[२४६] सासारिक

त्यज्यन्तामाशु राज्यानि, सेवा वा क्रियता मम।
आदिदेशेति पुरुषैर्भरतो न परानिव ॥
वचोमात्रेण मुञ्चामस्तस्याऽऽत्मवहुमानिनः।
तातदत्तानि राज्यानि क्लीवा इव कथ वयम् ?
सेवामपि कथ कुर्मो, निरीहा अधिकर्द्धिषु ?।
अतृप्ता एव कुर्वन्ति सेवा मानविघातिनीम् ॥
राज्यामुक्तावमेवाया युद्ध स्वयमुपस्थितम्।
तातपादास्त्वनापृच्छ्य, न किंचित् कर्तुमीश्महे ॥

—त्रिषष्ठि १।४।८२१–८२६

२४६. आवश्यक चूर्णि पृ० २०६।

(ख) ताहे सामी भोगेसु नियत्तावेमाणो तेसि धम्म कहेइ, न मुत्ति-सरिस सुहमत्थि।

—आवश्यक मल० वृ० पृ० २३१

(ग) दीक्षा रक्षा गुणा भृत्या दयेय प्राणवल्लभा।
इति ज्यायस्तपोराज्यमिद श्लाघ्यपरिच्छदम् ॥

—महापुराण ३४।१२४।१६१ द्वि० भा०

सुखो से आध्यात्मिक सुख विशेष है।[२४७] इसे ग्रहण करो, इसमे न कायरता की आवश्यकता है और न युद्ध का ही प्रसंग है।

मूर्ख लकडहारे[२४८] का रूपक देते हुए भगवान् ने कहा—एक लकडहारा था, वह भाग्यहीन और अज्ञ था। प्रतिदिन कोयले बनाने के लिए वह जंगल मे जाता और जो कुछ भी प्राप्त होता उससे अपना भरण पोषण करता। एक बार वह भीष्म-ग्रीष्म की चिल-चिलाती धूप मे थोडा-सा पानी लेकर जंगल मे गया। सूखी लकडियाँ एकत्रित की। कोयले बनाने के लिए उन लकडियो मे आग लगादी।

चिलचिलाती धूप, प्रचण्ड ज्वाला, तथा गर्म लू के कारण उसे अत्यधिक प्यास लगी। साथ मे जो पानी लाया था वह पी गया, पर प्यास शान्त न हुई। इधर उधर जंगल मे पानी की अन्वेषणा की, पर, कही भी पानी उपलब्ध नही हुआ। सन्निकट कोई गाँव भी नही था, प्यास से गला सूख रहा था, घबराहट बढ रही थी। वह एक वृक्ष

---

२४७ भगवती १४, उद्दे० ६।

२४८. ताहे इगालदाहगदिट्ठ त कहेति, जहा एगो इगालदाहगो, सो एग भायणं पाणियस्स भरेऊण गतो, त तेण उदग णिट्ठवित, उवरि आदिच्चो पासे अग्गी पुणो परिस्समो दारुगाणि कोट्टेतस्स घर गतो, तत्थ पाणित पीतो, एव असब्भावपट्ठवणाए कूवतलागणदिदहसमुद्दा य सव्वे पीता, ण य तण्हा छिज्जति, ताहे एगमि तुच्छकुहितविरस-पाणिए जुन्नकूवभिरिडे तणपूलित गहाय उस्सिचति, ज पडितसेन त जीहाए लिहति, से केस ण ! एव तुब्भेहिवि अणतर सव्वट्ठे अणुत्तरा सव्वेऽवि सव्वलोए सद्दफरिसा अणुभूतपुव्वा तहवि तित्ति ण गता, तो ण इमे माणुस्सए असुइए तुच्छे अप्पकालिए विरसे कामभोगे अभिलसह, एव वेयालीय णाम अज्झयण भासति "सबुज्झह किन्न बुज्झह"

—आवश्यकचूर्णि जिनदास, पृ० २०६–२१०

(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति।

के नीचे लेट गया, नीद आगई। उसने स्वप्न देखा कि वह घर पहुँच गया है। घर पर जितना भी पानी है, पी गया है, तथापि प्यास शान्त नही हुई। कुँए पर गया और वहाँ का सारा पानी पी गया। पर प्यास नही बुझी। नदी, नाले और द्रहो का पानी पीता हुआ समुद्र पर पहुँचा, समुद्र का सारा पानी पी लेने पर भी उसकी प्यास कम नही हुई। तब वह एक पानी से रहित जीर्ण कूप के पास पहुँचा। वहाँ पानी तो नही था, किन्तु भीगे हुए तिनको को देखकर मन ललचाया और उन तिनको को निचोड कर प्यास बुझाने का प्रयास कर रहा था कि नीद खुल गई। रूपक का उपसहार करते हुए भगवान् ने कहा—क्या पुत्रो ! उन भीगे हुए तिनको से उस लकडहारे की प्यास शान्त हो सकती है ? जबकि कुए, नदी, द्रह, तालाब और समुद्र के पानी से नही हुई थी !

पुत्रो ने एक स्वर से कहा—नही भगवन् ! कदापि नही।

भगवान् ने उन्हे अपने अभिमत की ओर आकृष्ट करते हुए कहा—पुत्रो ! राज्यश्री से तृष्णा को शात करने का प्रयास भी भीगे हुए तिनको को निचोडकर पीने से प्यास बुझाने के प्रयास के समान है। दीर्घकालीन अपार स्वर्गीय सुखो से भी जब तृष्णा शान्त नही हुई तो इस तुच्छ और अल्पकालीन राज्य से कैसे हो सकती है ? अत सम्बोधि को प्राप्त करो। वस्तुत जब तक स्वराज्य नही मिलता तब तक परराज्य की कामना रहती है। स्वराज्य मिलने पर परराज्य का मोह नही रह जाता।

भगवान् ने उस समय अपने पुत्रो को वैराग्यवर्द्धक एव प्रभावजनक जो उपदेश दिया था, वह सूत्रकृताग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध के द्वितीय 'वैतालीय' नामक अध्ययन मे उल्लिखित है। जिनदास महत्तर के उल्लेख से स्पष्ट है कि यह अध्ययन भगवान् के उसी उपदेश के आधार पर प्रवृत्त हुआ है। उस उपदेश मे बतलाया गया है कि—'मानव को शीघ्र-से-शीघ्र प्रतिबोध लाभ करना चाहिए, क्योकि व्यतीत समय लौटकर नही आता और पुन मनुष्यभव सुलभ नही है। प्राप्त जीवन का भी कोई ठिकाना नही। बालक, वृद्ध यहाँ तक कि गर्भस्थ मनुष्य भी मृत्यु के शिकार हो

जाते हैं। जगत् का उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट वैभव भी मृत्यु का निवारण करने में समर्थ नहीं है। यही कारण है कि देव, दानव, गंधर्व, भूमिचर, सरीसृप, राजा और बड़े-बड़े सेठ, साहूकार भी दुःख के साथ अपने स्थान से च्युत होते देखे जाते हैं। बन्धन से च्युत ताल फल के समान आयु के टूटने पर जीव मृत्यु को प्राप्त होते हैं, इत्यादि।'

वस्तुतः यह सम्पूर्ण अध्ययन अतीव मार्मिक और विस्तृत है। मुमुक्षुजनों के लिए मननीय है।

भागवतकार ने भी भगवान् के पुत्रोपदेश का वर्णन दिया है, जिसका सार इस प्रकार है—पुत्रो! मानवशरीर दुःखमय विषयभोग प्राप्त करने के लिए नहीं है। ये भोग तो विष्टाभोजी कूकरशूकरादि को भी प्राप्त होते हैं, अतः इस शरीर से दिव्य तप करना चाहिए क्योंकि इसी से परमात्मतत्त्व की प्राप्ति होती है।[२४९]

प्रमाद के वश मानव कुकर्म करने को प्रवृत्त होता है। वह इन्द्रियों को तृप्त करने के लिए प्रवृत्ति करता है, पर मैं उसे श्रेष्ठ नहीं समझता, क्योंकि उसी से दुःख प्राप्त होता है।[२५०] जब तक आत्मतत्त्व की जिज्ञासा नहीं होती तब तक स्वस्वरूप के दर्शन नहीं होते, वह विकार और वासना के दलदल में फँसा रहता है और उसी से बन्धन की प्राप्ति होती है।[२५१]

---

२४९. नायं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्॥
—श्रीमद् भागवत ५।५।१।५५६

२५०. नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म,
यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति।
न साधु मन्ये यत आत्मनोऽय-
मसन्नपि क्लेशद आस देहः॥
—श्रीमद् भागवत ५।५।४।५५६

२५१. पराभवस्तावदबोध-जातो,
यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम्।

इस प्रकार अविद्या के द्वारा आत्म-स्वरूप आच्छन्न होने से कर्मवासनाओ से वशीभूत वना हुआ चित्त मानव को फिर कर्म मे प्रवृत्त करता है। अत जब तक मुझ परमात्मा मे प्रीति नही होती तब तक देहबन्धन से मुक्ति नही मिलती।[२५२]

स्वार्थ मे उन्मत्त वना जीव जब तक विवेकदृष्टि का आश्रय लेकर इन्द्रियो की चेष्टाओ को अयथार्थ रूप मे नही देखता है, तब तक आत्मस्वरूप विस्मृत होने से वह गृह आदि मे ही आसक्त रहता है और विविध प्रकार के क्लेश उठाता है।[२५३]

इस प्रकार भगवान् की दिव्य देशना मे राज्य-त्याग की वात को सुनकर वे सभी अवाक् रह गये, पर शीघ्र ही उन्होने भगवान् के प्रशस्त पथप्रदर्शन का स्वागत किया। अठानवे ही भ्राताओ ने राज्य त्यागकर संयम ग्रहण किया।[२५४]

यावत्क्रियास्तावदिद मनो वै,
कर्मात्मक येन शरीरवन्ध ॥
—भागवत ५।५।५।५६०

२५२ एव मन कर्मवश प्रयुङ्क्ते,
अविद्ययाऽऽत्मन्युपधीयमाने ।
प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे,
न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥
—भागवत ५।५।६।५६०

२५३. यदा न पश्यत्ययथा गुणेहा,
स्वार्थे प्रमत्त सहसा विपश्चित् ।
गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापा-
नासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञ ॥
—भागवत ५।५।७।५६०

२५४. (क) एव अट्ठाणउईए वित्तेहि अट्ठाणउई कुमारा पव्वइता।
—आवश्यक चूर्णि

(ख) एव अट्ठाणउईवित्तेहि अट्ठाणउई कुमारा पव्वइयत्ति।
—आवश्यक मल० वृ० प० २३१

जाते है। जगत् का उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट वैभव भी मृत्यु का निवारण करने मे समर्थ नहीं है। यही कारण है कि देव, दानव, गधर्व, भूमिचर, सरीसृप, राजा और बड़े-बडे सेठ, साहूकार भी दु ख के साथ अपने स्थान से च्युत होते देखे जाते है। वन्धन से च्युत ताल फल के समान आयु के टूटने पर जीव मृत्यु को प्राप्त होते है, इत्यादि।'

वस्तुत यह सम्पूर्ण अध्ययन अतीव मार्मिक और विस्तृत है। मुमुक्षुजनो के लिए मननीय है।

भागवतकार ने भी भगवान् के पुत्रोपदेश का वर्णन दिया है, जिसका सार इस प्रकार है—पुत्रो! मानवशरीर दु खमय विषयभोग प्राप्त करने के लिए नही है। ये भोग तो विष्टाभोजी कूकरशूकरादि को भी प्राप्त होते है, अत इस शरीर से दिव्य तप करना चाहिए क्योकि इसी से परमात्मतत्त्व की प्राप्ति होती है।[२४९]

प्रमाद के वश मानव कुकर्म करने को प्रवृत्त होता है। वह इन्द्रियो को तृप्त करने के लिए प्रवृत्ति करता है, पर मै उसे श्रेष्ठ नही समझता, क्योकि उसी से दु ख प्राप्त होता है।[२५०] जब तक आत्मतत्त्व की जिज्ञासा नही होती तब तक स्वस्वरूप के दर्शन नहीं होते, वह विकार और वासना के दलदल मे फँसा रहता है और उसी से वन्धन की प्राप्ति होती है।[२५१]

---

२४९. नायं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्॥
—श्रीमद् भागवत ५।५।१।५५६

२५०. नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म,
यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति।
न साधु मन्ये यत आत्मनोऽय-
मसन्नपि क्लेशद आस देहः॥
—श्रीमद् भागवत ५।५।४।५५६

२५१. पराभवस्तावदबोध-जातो,
यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम्।

इस प्रकार अविद्या के द्वारा आत्म-स्वरूप आच्छन्न होने से कर्मवासनाओ से वशीभूत बना हुआ चित्त मानव को फिर कर्म मे प्रवृत्त करता है। अत जब तक मुझ परमात्मा मे प्रीति नही होती तब तक देहबन्धन से मुक्ति नही मिलती।[२५२]

स्वार्थ मे उन्मत्त बना जीव जब तक विवेकदृष्टि का आश्रय लेकर इन्द्रियो की चेष्टाओ को अयथार्थ रूप मे नही देखता है, तब तक आत्मस्वरूप विस्मृत होने से वह गृह आदि मे ही आसक्त रहता है और विविध प्रकार के क्लेश उठाता है।[२५३]

इस प्रकार भगवान् की दिव्य देशना मे राज्य-त्याग की बात को सुनकर वे सभी अवाक् रह गये, पर शीघ्र ही उन्होने भगवान् के प्रशस्त पथप्रदर्शन का स्वागत किया। अठानवे ही भ्राताओ ने राज्य त्यागकर संयम ग्रहण किया।[२५४]

यावत्क्रियास्तावदिद मनो वै,
कर्मात्मक येन शरीरबन्ध. ॥
—भागवत ५।५।५।५६०

२५२. एव मन कर्मवश प्रयुङ्क्ते,
अविद्ययाऽऽत्मन्युपधीयमाने ।
प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे,
न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥
—भागवत ५।५।६।५६०

२५३ यदा न पश्यत्ययथा गुणेहा,
स्वार्थे प्रमत्त सहसा विपश्चित् ।
गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापा-
नासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञ ॥
—भागवत ५।५।७।५६०

२५४. (क) एव अट्ठाणउईए वित्तेहि अट्ठाणउई कुमारा पव्वइता।
—आवश्यक चूर्णि

(ख) एव अट्ठाणउईवित्तेहि अट्ठाणउई कुमारा पव्वइयत्ति।
—आवश्यक मल० वृ० प० २३१

सम्राट् भरत को यह सूचना मिली तो वह दौड़ा-दौड़ा आया। भ्रातृ प्रेम से उसकी आँखे गीली हो गई। पर उसकी गीली आँखे अठानवे भ्राताओं को पथ से विचलित नही कर सकी। भरत निराश होकर पुन घर लौट गया।[२५५-२५६]

भरत और बाहुबली

भरत समग्र भारत मे यद्यपि एक शासनतन्त्र के द्वारा एक अखण्ड भारतीय संस्कृति की स्थापना करने के लिए प्रयत्नशील थे, मगर दूसरो की स्वतन्त्रता को सीमित किये विना उनका उद्देश्य पूरा नही हो सकता था। ९८ भाइयो के दीक्षित होने से यद्यपि उनका पथ निष्कण्टक बन गया था, तथापि एक बडी बाधा अब भी उनके सामने थी। वह थी बाहुबली को अपना आज्ञानुवर्ती बनाना। इसके लिए उसने अब अपने लघु भ्राता बाहुबली को यह सन्देश पहुँचाया

(ग) अमन्दानन्दनि स्यन्दनिर्वाणप्राप्तिकारणम्।
वत्सा ! सयमराज्य तद्, युज्यते वो विवेकिनाम्॥
तत्कालोऽत्पन्नसवेगवेगा भगवदन्तिके।
तेऽष्टानवतिरप्याशु, प्रव्रज्या जगृहुस्तत ॥
—त्रिषष्टि० १।४।८४४-८४५ प० १२०

(घ) इत्याकर्ण्य विभोर्वाक्य पर निर्वेदमागता।
महाप्राज्यमास्थाय निष्क्रान्तास्ते गृहाद्वनम्॥
—महापुराण ३४।१२५।१६२

२५५-२५६ आणवण भाउआणा समुसरणे पुच्छ दिट्ठन्तो।
—आव० नि० गा० ३४८

(ख) जदि भातरो मे इच्छन्ति तो भोगे देमि, भगवं च आगतो, ताहे भाउए भोगेहि निमतेति, ते ण इच्छति वत अगितु।
—आवश्यक चूर्णि पृ० २१२

(ग) भरतोऽपि भ्रातृप्रव्रज्याकर्णनात् सञ्जातमनस्तापोऽधृति चक्रे, कदाचिद्भोगान् दीयमानान् पुनरपि गृह्णन्तीत्यालोच्य भगवत्समीप समागम्य निमन्त्रयञ्च तान्।
—आवश्यक मल० वृ० प० २३५

(घ) त्रिषष्टि० १।३।१९०-१९६

कि वह अधीनता स्वीकार करले। ज्योही भरत का यह सन्देश सुना, त्योही बाहुबली की भृकुटि तन गई। उपशान्त क्रोध उभर आया। दाँतो को पीसते हुए उसने कहा—"क्या भाई भरत की भूख अभी तक शान्त नही हुई है ? अपने लघु भ्राताओ के राज्य को छीन करके भी उसे सन्तोष नही हुआ है। क्या वह मेरे राज्य को भी हडपना चाहता है। यदि वह यह समझता है कि मैं शक्तिशाली हूँ और शक्ति से सभी को चट कर जाऊँगा तो यह शक्ति का सदुपयोग नही, दुरुपयोग है। मानवता का भयङ्कर अपमान है और व्यवस्था का अतिक्रमण है। हमारे पूज्य पिता व्यवस्था के निर्माता हैं और हम उनके पुत्र होकर व्यवस्था को भङ्ग करते हैं ! यह हमारे लिए उचित नही है। बाहु-बल की दृष्टि से मैं भरत से किसी प्रकार कम नही हूँ। यदि वह अपने बडप्पन को विस्मृत कर अनुचित व्यवहार करता है तो मैं चुप्पी नही साध सकता। मैं दिखा दूंगा भरत को कि आक्रमण करना कितना अनुचित है। जब तक वह मुझे नही जीतता तब तक विजेता नही है।[२५७]

भरत विराट् सेना लेकर बाहुबली से युद्ध करने के लिए "बहली देश" की सीमा पर पहुँच गये। बाहुबली भी अपनी छोटी सेना सजाकर युद्ध के मैदान मे आगया। बाहुबली के वीर सैनिको ने भरत की

---

२५७ जाहे ते सव्वे पव्वइता ताहे भरहेण बाहुबलिस्स पत्थवित, ताहे सो ते पव्वइते सोऊण आसुरत्तो भणति—ते बाला तुमे पव्वाविता, अह पुण जुद्धसमत्थो। किं वा ममंमि अजिते तुमे जित ति ? ता एहि अह वा राया तुम वा।

—आवश्यक चूर्णि, पृ० २१०

(ख) कुमारेसु पव्वइएसु भरहेण बाहुबलिणो दूओ पेसिओ, सो ते पव्वइए सोउं आसुरुत्तो, ते बाला तुमए पव्वाविया।

—आवश्यक मल० वृ० प० २३१

हृत्वाऽनुजाना राज्यानि, नूनमेष न लज्जित ।
जितकाशी राज्यकृते, मामप्याह्वयते यत ।।

—त्रिषष्टि० १।५।४९७

विराट् सेना के छक्के छुड़ा दिये। लम्बे समय तक युद्ध चलता रहा, पर न भरत ही जीते और न बाहुबली ही। अन्त में बाहुबली के कहने पर निर्णय किया कि व्यर्थ ही मानवों का रक्त-पात करना अनुचित है, क्यों न हम दोनों मिलकर युद्ध करलें।[२५८]

दिगम्बराचार्य जिनसेन ने दोनों भाइयों के जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध और बाहुयुद्ध इन तीन युद्धों का निरूपण किया है।[२५९]

आचार्य जिनदास गणिमहत्तर ने दृष्टि युद्ध, वाग् युद्ध, बाहु युद्ध और मुष्टि युद्ध का प्ररूपण किया है।[२६०]

उपाध्याय श्री विनय विजय जी ने दृष्टि युद्ध, वाग् युद्ध, मुष्टि-युद्ध, दण्ड युद्ध इन चार युद्धों का निर्देश किया है।[२६१]

आवश्यक भाष्यकार,[२६२] तथा आचार्य हेमचन्द्र[२६३] व

---

२५८. ताहे ते सव्वबलेण दोवि देसते मिलिया, ताहे बाहुबलिणा भणित— किं अणवराहिणा लोगेण मारिएण ? तुमं अहं च दुयगा जुज्झामो, एवं होउत्ति।

—आवश्यक चूर्णि पृ० २१०

२५९. जलदृष्टिनियुद्धेषु, योऽनयोर्जयमाप्स्यति।
स जयश्रीविलासिन्याः पतिरस्तु स्वयंवृत ॥

—महापुराण ३६।४५।२०४। द्वि० भा०

२६०. तेसिं पढमं दिट्ठिजुद्ध जातं, तत्थ भरहो पराजितो। पच्छा वायाए, तहिंपि भरहो पराजितो, एवं बाहुजुद्धेऽवि पराजितो, ताहे मुट्ठिजुद्ध जातं तत्थवि पराजितो।

—आवश्यक चूर्णि पृ० २१०

२६१. कल्पसूत्र, सुबोधिका टीका पृ० ५१३ नाग० न०

२६२. पढमं दिट्ठीजुद्धं वायाजुद्धं तहेव बाहाहिं।
मुट्ठीहि अ दंडेहि अ सव्वत्थवि जिप्पए भरहो ॥

—आवश्यक भाष्य गा० ३२

२६३. त्रिषष्टि० पर्व १, सर्ग ५

समयसुन्दर[२६४] प्रभृति ने दृष्टि युद्ध, वाक्युद्ध, वाहुयुद्ध, मुष्टि युद्ध और दण्डयुद्ध इन पाँच का वर्णन किया है। सभी मे सम्राट् भरत पराजित हुए और वाहुवली विजयी हुए। भरत को अपने लघु भ्रातासे पराजित होना अत्यधिक अखरा।[२६५] आवेश मे आकर और मर्यादा को विस्मृत कर वाहुवली के शिरश्छेदन करने हेतु भरत ने चक्र का प्रयोग किया। यह देख वाहुवली का खून उवल गया। वाहुवली ने उछलकर चक्र को पकडना चाहा, पर चक्र वाहुवली की प्रदक्षिणा कर पुन भरत के पास लौट गया। वाहुवली का वाल भी वाँका न हुआ।[२६६] यह देख सभी सन्न

---

२६४ पचयुद्धानि स्यागितानि (१) दृष्टियुद्ध, (२) वागयुद्ध, (३) वाहुयुद्ध, (४) मुष्टियुद्ध, (५) दण्ड युद्धानि। एतै. पञ्चयुद्धै. योजितः स जितो ज्ञेयः।

—कल्पलता—समयसुन्दर पृ० २१०

(ख) कल्पार्थ वोधिनी पृ० १५१।

(ग) कल्पद्रुम कलिका पृ० १५२।

२६५ सो एव जिप्पमाणो विहुरो अह नरवई विचिंतेइ।
किं मन्ने एस चक्की ? जह दाणि दुव्वलो अहय ॥

—आवश्यक भाष्य गा० ३३

(ख) ताहे सो एव जिव्वमाणो विधुरो अह णरवती विचिंतेति कि मन्ने एस चक्की जह दाणि दुव्वलो अहय, तस्सेव सकप्पे देवता आउह देंति डडरयण, ताहे सो तेण गहितेण धावति।

—आवश्यक चूर्णि० २१०

(ग) क्रोधान्धेन तदा दध्ये, कर्तु मस्य पराजयम्।
चक्रमुत्कृत्तनिःशेषद्विपच्चक्र निधीशिना ॥
आध्यानमात्रमेत्याराद् अद कृत्वा प्रदक्षिणाम्।
अवध्यस्यास्य पर्यन्त तस्थौ मन्दीकृतातपम् ॥

—महापुराण, पर्व ३६, श्लो० ६५–६६ भा० २ पृ० २०५

२६६. एव विमृशतस्तक्षशिलाभर्तुरुपेत्य तत्।
चक्रं प्रदक्षिणा चक्रमन्तेवासी गुरोरिव ॥
न चक्र चक्रिण शक्त, सामान्येऽपि स्वगोत्रजे।
विशेषस्तु चरमशरीरे नरि तादृशे ॥

—त्रिषष्ठि० १ ५।७२२।७२३

रह गये। बाहुबली की विरुदावली से भू-नभ गूँज उठा। भरत अपने दुष्कृत्य पर लज्जित हो गये।[२६७]

इस घटना से क्रुद्ध हो बाहुबली ने भरत पर प्रहार करने के लिए अपनी प्रबल मुट्ठी उठाई। उसे देख लाखो कण्ठो से ये स्वर लहरियाँ फूट पडी—सम्राट् भरत ने भूल की है, पर आप भूल न करें। लघु भाई के द्वारा बडे भाई की हत्या अनुचित ही नही, अत्यन्त अनुचित है।[२६८] महान् पिता के पुत्र भी महान् होते हैं। क्षमा कीजिये, क्षमा करने वाला कभी छोटा नही होता।

बाहुबली का रोष कम हुआ। उठा हुआ हाथ भरत पर न पडकर स्वयं के सिर पर गिरा। वे लुंचन कर श्रमण बन गये।[२६९] राज्य को ठुकराकर पिता के चरण-चिह्नो पर चल पड़े।[२७०]

सफलता नहीं मिली

बाहुबली के पैर चलते-चलते रुक गये। वे पिता श्री के शरण मे पहुँचने पर भी चरण मे नही पहुँच सके। पूर्व दीक्षित लघु भ्राताओ को

---

२६७ भरतस्त तथा दृष्ट्वा, विचार्यं स्व कुकर्म च।
बभूव न्यञ्चितग्रीवो, विविक्षुरिव मेदिनीम् ॥
—त्रिषष्ठि १।४।७४६

२६८ अमर्षाच्चिन्तयित्वैव सुनन्दानन्दनो हृदाम्।
मुष्टिमुद्यम्य यमवद् भीषण. समधावत ॥
करीवोन्मुद्गरकर. कृतमुष्टिकरो द्रुतम्।
जगाम भरताधीशान्तिक तक्षशिलापति. ॥
—त्रिषष्ठि० १।५।७२७-७२८

२६९ इत्युदित्वा महासत्त्व सोऽग्रणी सीत्रकारिणाम्।
तेनैव मुष्टिना मूर्ध्न, उदध्रे तृणवत् कचान् ॥
—त्रिषष्ठि० १।५।७४०

२७०. सोऽप्येव चिन्तयामास प्रतिपन्नमहाव्रत.।
कि तातपादपद्मान्तमह गच्छामि सम्प्रति ? ॥
—त्रिषष्ठि० १।५।७४२

नमन करने की वात स्मृति मे आते ही उनके चरण एकान्त शान्त कानन मे ही स्तब्ध हो गये, असन्तोष पर विजय पाने वाले वाहुवली अस्मिता से पराजित हो गये। एक वर्ष तक हिमालय की तरह अडोल ध्यान-मुद्रा मे अवस्थित रहने पर भी केवल ज्ञान का दिव्य आलोक प्राप्त नही हो सका। शरीर पर लताएँ चढ गई, पक्षियो ने घौसले बना लिये, पैर वल्मीको (बाँबियो) से वेष्टित हो गए, तथापि सफलता नही मिली।[२७१]

वाहुवली को केवलज्ञान

एक वर्ष के पश्चात् भगवान् श्री ऋपभदेव ने वाहुवली मे अन्तर्ज्योति जगाने के लिए ब्राह्मी और सुन्दरी को प्रेषित किया।

---

२७१ पच्छा वाहुवली चितेति—अह कि तायाण पास वच्चामि ? इह चेव अच्छामि जाव केवलणाण उप्पज्जति। एव सो पडिम ठितो पव्वयसिहरो। सामी जाणति तहवि ण पत्थवेति, अमूढलक्खा तित्थगरा। ताहे सवच्छर अच्छति काउस्सग्गेण वल्लीविताणेण वेढितो पादा य वम्मिएण।

—आवश्यक चूर्णि—पृ० २१०

(ख) वाहुवली विचिन्तेइ—तायसमीवे भाउणो मे लघुतरा समुप्पण्णणाणातिसया ते किह निरतिसओ पेच्छामि ? एत्थेव ताव अच्छामि जाव केवलनाण समुप्पज्जति, एव सो पडिम ठिओ, ठिओ माणपव्वयसिहरे, जाणइ सामी तहवि न पट्ठवेइ, अमूढलक्खा तित्थयरा, ताहे सवच्छर अच्छइ काउस्सग्गेण, वल्लीविताणेण वेढिओ पाया य वम्मीयनिग्गएहि भुयगेहि।

—आवश्यक मलयगिरि वृत्ति० प० २३२।१

(ग) शरीरमधिरुढैस्तैर्लवमानैर्भुजगमै ।
वभौ वाहुवलिर्वाहुसहस्रमिव धारयन् ॥
पादपर्यतवल्मीकविनिर्यातैर्महोरगै ।
पादयोर्वेष्टयाचक्रे स पादकटकैरिव ॥
इत्थ स्थितस्य ध्यानेन तस्यैको वत्सरो ययौ।
विनाऽऽहार विहरतो वृपभस्वामिनो यथा ॥

—त्रिपष्टि० १।५।७७६—से ७७८

भगिनीद्वय ने बाहुबली को नमन किया, और कहा—"हस्ती पर आरूढ व्यक्ति को कभी केवल ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती, अत. नीचे उतरो"[२७२]— ये शब्द बाहुबली के कर्ण कुहरों मे गिरे, चिन्तन का प्रवाह बदला,— कहाँ है यहाँ हाथी ? क्या अभिप्राय है इनका ? हाँ, समझा, मान हाथी है और मैं उस पर आरूढ हूँ। मैं व्यर्थ ही अवस्था के भेद मे उलझ गया। वे भाई वय में भले ही मुझ से छोटे है, पर चारित्रिक दृष्टि से बडे है। मुझे नमन करना चाहिए।" नमन करने के लिए ज्यो ही पैर उठे कि बन्धन टूट गये। विनय ने अहंकार को पराजित किया। केवली बन गये। भगवान् के चरणो मे पहुँच

---

२७२. पुन्ने सवत्सरे भगव बभी सुदरीओ पत्यवेति। पुव्वि ण पत्थिताओ जेण तदा सम्म ण पडिवज्जिहिति, ताहे सो मग्गतीहि वल्लीहि य तणेहि य वेढितेण य महल्लेण कुच्चेण त दट्ठूण वदितो ताहि, इमं च भणितो—"ण किर हत्थि विलगस्स केवलनाणं उप्पज्जइ" एव भणिऊण गताओ।

—आवश्यक चूर्णि—पृ० २१०–२११

(ख) पुण्णे य सवच्छरे भगव बभिसुंदरीओ पट्ठवेइ, पुव्वि नेव पट्ठविया जेण तया सम्म न पडिवज्जइत्ति, ताहि सो मग्गतीहिं वल्लीतणवेढिओ दिट्ठो सन्डेण महल्लेण सन्वेण ति। त दट्ठूण वदिओ इम च भणिओ—"न किर हत्थीविलगस्स केवल नाण समुप्पज्जइ त्ति भणिऊण गयाओ।

—आवश्यक नि० मल० वृत्ति० पृ० २३२

(ग) निपुणं लक्षयित्वा ते कृत्वा त्रिश्च प्रदक्षिणाम्।
महामुनिं बाहुबलिं, ते वन्दित्वैवमूचतुः॥
आज्ञापयति तातस्त्वां, ज्येष्ठार्य! भगवानिदम्।
हस्तिस्कन्धाधिरूढानामुत्पद्येत न केवलम्॥

—त्रिषष्टि० १।५।७८७–७८८

(घ) कल्पलता, समय सुन्दर पृ० २११।१

(ङ) कल्पद्रुम कलिका लक्ष्मी० पृ० १५२

(च) कल्पार्थ बोधिनी पृ० १४४–१४५

गये। भगवान् श्री ऋषभदेव को नमन कर केवलीपरिषद् मे बैठ गये।[२७३]

आचार्य श्री जिनसेन ने प्रस्तुत घटना का उल्लेख अन्य प्रकार

---

२७३. ताहे सो पचिन्ति तो "कहि एत्थ हत्थी ? तातो य अलिय न भणति।" एव चिंतितेण णात, जहा माणहत्थी अत्थित्ति, को य मम माणो ? त वच्चामि भगव वंदामि ते य साहुणोत्ति, पाओ उक्खित्तो, केवलनाण च उप्पन्न, ताहे केवलिपरिसाए ट्ठितो।

—आवश्यक चूर्णि पृ० २११

(ख) ताहे चितियाइओ—कहि एत्थ हत्थी ? ताओ य अलिय न भणति, ततो चिंतेतेण णाय—जहा माणहत्थित्ति, को य मम माणो ? वच्चामि भगवत वदामि ते य साहुणोत्ति, पादे उक्खित्ते केवलनाण समुप्पण्ण।

——आवश्यक मल० वृ० प० २३२

(ग) इदानीमपि गत्वा तान् वन्दिष्येऽह महामुनीन्।
चिन्तयित्वेति स महासत्त्व पादमुदक्षिपत्॥
लतावल्लीवत् त्रुटितेष्वभितो घातिकर्मसु।
तस्मिन्नेव पदे ज्ञानमुत्पेदे तस्य केवलम्॥
उत्पन्नकेवलज्ञानदर्शन सौम्यदर्शन।
रवेरिव शशी सोऽथ, जगाम स्वामिनोऽन्तिकम्॥
प्रदक्षिणां तीर्थकृतो विधाय।
तीर्थाय नत्वा च जगन्नमस्य॥
महामुनि. केवलिपर्षदन्त—
स्तीर्णप्रतिज्ञो निषसाद सोऽथ॥

—त्रिषष्टि० १।५।७९५-७९८

(घ) उप्पन्ननाणरयणो तिन्नपइण्णो जिणस्स पयमूले।
गतु तित्थ नमिउ केवलि परिसाइ आसीणो॥

—आवश्यक भाष्य० गा० ३५

(ङ) यावच्चरणौ उदक्षिपत्तावत्केवलमप्राप्त्।

—कल्पार्थ बोधिनी

से करते हुए बताया है कि बाहुबली श्रमण बनकर एक वर्ष तक ध्यानस्थ रहे। भरत के अकृत्य का विचार उनके अन्तर्मानस में बना रहा। जब एक वर्ष के पश्चात् भरत आकर उनकी अर्चना करते हैं तब उनका हृदय निःशल्य बनता है और केवल ज्ञान उत्पन्न होता है।[२७४]

अनासक्त भरत

भरत ने अपने भ्राताओं के साथ जो व्यवहार किया था, उससे वे स्वयं लज्जित थे। भ्राताओं को गँवाकर राज्य प्राप्त कर लेने पर भी उनके अन्तर्मानस में शान्ति नहीं थी। विराट् राज्य का उपभोग करते हुए भी वे उसमें आसक्त नहीं थे। सम्राट् होने पर भी वे साम्राज्यवादी नहीं थे।

एक बार भगवान् श्री ऋषभदेव अपने शिष्यवर्गसहित विनीता के बाग में पधारे। जनसमूह धर्मदेशना श्रवण करने को आया। प्रवचन परिषद् में ही एक सज्जन ने भगवान् से प्रश्न किया—"भगवन्! क्या भरत मोक्षगामी है?" वीतराग भगवान् ने कहा—'हाँ'। प्रश्नकर्ता ने कहा—'आश्चर्य है भगवान् होकर भी पुत्र का पक्ष लेते हैं।'

भरत ने सुना और सोचा—भगवान् पर यह आरोप लगा रहा है। इसे मुझे शिक्षा देनी चाहिए। दूसरे ही दिन उस व्यक्ति को फाँसी की सजा सुना दी गई। फाँसी की सजा सुन वह घबराया, भरत के चरणों में गिरा, गिड़गिड़ाया, अपराध के लिए क्षमा माँगने लगा।

भरत ने कहा—तैल से परिपूरित कटोरे को लेकर विनीता के बाजारों में घूमो। स्मरण रखना, एक बूँद भी नीचे न गिरने पाये। नीचे गिरते ही फाँसी के तख्ते पर लटका दिये जाओगे। यदि एक बूँद भी नीचे न गिरेगी तो तुम्हें मुक्त कर दिया जायेगा।

---

२७४. संक्लिष्टो भरताधीशः सोऽस्मत्त इति यत्किल।
हृदस्य हार्दं तेनासीत् तत्पूजाऽपेक्षि केवलम्॥
—महापुराण जिन० ३६।१८६।२१७ द्वि० भा०

अभियुक्त सम्राट् के आदेशानुसार घूमकर लौट आया।

सम्राट् ने प्रश्न किया—क्या तुम नगर मे घूमकर आये हो? अभियुक्त ने विनीत मुद्रा मे कहा—हॉ महाराज! सम्राट् ने पुनः प्रश्न किया—नगर मे तुमने क्या-क्या देखा?

अभियुक्त ने निवेदन किया—कुछ भी नही देखा भगवन्!

सम्राट् ने पुन पूछा—क्या नगर मे जो नाटक हो रहे थे वे तुमने नही देखे? क्या नगर मे जो सगीत मण्डलियॉ यत्रतत्र सगीत गा रही थीं उन्हे तुमने नही सुना।

अभियुक्त ने कहा—राजन्! जब मौत नेत्रो के सामने नाच रही हो तब नाटक कैसे देखे जा सकते हैं? और जब मौत की गुनगुनाहट कर्णकुहरो मे चल रही हो तब गीत कैसे सुने जा सकते हैं?

सम्राट् ने मुस्कराते हुए कहा—क्या मृत्यु का इतना अधिक भय है?

अभियुक्त ने कहा—सम्राट् को इसका क्या पता? यह तो मृत्यु-दण्ड पाने वाला ही अनुभव कर सकता है।

सम्राट् ने कहा—तो क्या सम्राट् अमर है? उसे मृत्यु का साक्षात्कार नही करना पडेगा? तुम तो एक जीवन की मृत्यु से ही इतने अधिक भयाक्रान्त हो गए कि आँखो के सामने नाटक होने पर भी नाटक नही देख सके और कानो के पास सगीत की सुमधुर स्वर लहरियाँ झनझनाने पर भी सगीत नही सुन सके। परन्तु बन्धु, तुम्हे यह ज्ञात होना चाहिये कि मै तो मृत्यु की दीर्घपरम्परा से परिचित हूँ अतः मुझे अब साम्राज्य का विराट् सुख भी नही लुभा पा रहा है। मै तन से गृहस्थाश्रम मे हूँ, पर मन से उपरत हूँ।

अभियुक्त को अब भगवान् के सत्य कथन पर शका नही रही। उसे अपना अपराध समझ मे आ गया। उसे मुक्त कर दिया गया।[२७५]

भरत से भारतवर्ष

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रतापपूर्ण प्रतिभासम्पन्न

---

२७५ (क) जैन धर्म और दर्शन—मुनि नथमल पृ० १४
(ख) जैन दर्शन के मौलिक तत्त्व पृ० १४

भरत एक अतिजात पुत्र थे। पिता के द्वारा प्राप्त राज्यश्री को उन्होंने अत्यधिक विस्तृत किया और छः खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् बने।[२७६] केवल तन पर ही नहीं, अपितु प्रजा के मन पर शासन किया। उनकी पुण्य सस्मृति में ही प्रकृत देश का नाम भारतवर्ष हुआ।

वसुदेव हिंडी[२७७], जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति[२७८], श्रीमद्भागवत[२७९], वायुपुराण[२८०], अग्निपुराण[२८१], महापुराण[२८२], नारदपुराण[२८३],

---

२७६ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति भरताधिकार

२७७. तत्थ भरहो भरहवासचूडामणी।
तस्सेव नामेण इह भारहवास त्ति पव्वुचति॥
—वसुदेवहिण्डी प्र० ख० पृ० १८६

२७८. भरतनाम्नश्चक्रिणो देवाच्च भारतनाम प्रवृत्त भरतवर्षाच्च तयोर्नाम।
—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति

२७९ येषां खलु महायोगी ज्येष्ठ श्रेष्ठगुण
आसीद्येनेद वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति।
—श्री मद्भागवत पुराण स्कंध ५, अ० ४।६

(ख) अजनाभ नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति।
—श्री मद्भागवत ५।७।३। पृ० ५६६

(ग) येषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायण।
विख्यात वर्षमेतद् यन्नाम्ना भारतमद्भुतम्॥
—भागवत ११।२।१७

२८०. हिमाह्वय दक्षिण वर्षं भरताय न्यवेदयत्।
तस्माद् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः॥
—वायुपुराण अध्या० ३३, श्लो० ५२

२८१. भरताद् भारत वर्षं भरतात् सुमतिस्त्वभूत्॥
—अग्निपुराण अ० १० श्लो० १२

२८२. तन्नाम्ना भारत वर्षमिति ह्रासीज्जनास्पदम्।
हिमाद्रेरासमुद्राच्च क्षेत्र चक्रभृतामिदम्॥
—महापुराण १५।१५६।३३६

२८३. आसीत् पुरा मुनिश्रेष्ठो, भरतो नाम भूपतिः।
आर्षभो यस्य नाम्नेदं भारतं खण्डमुच्यते॥
—नारदपुराण अध्या० ४८ श्लो० ५

विष्णु पुराण[२८४], गरुड़पुराण[२८५], ब्रह्मपुराण[२८६], मार्कण्डेय पुराण[२८७], वाराह पुराण[२८८], स्कन्द पुराण[२८९], लिङ्ग पुराण[२९०], शिवपुराण[२९१], विश्वकोष[२९२] प्रभृति ग्रन्थो के उद्धरणो के प्रकाश मे भी यह

---

२८४ ऋषभाद् भरतो जज्ञे ज्येष्ठ: पुत्रशताग्रज: ।
ततश्च भारत वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ॥
—विष्णुपुराण अंश २, अध्या० १ श्लो० ३२

२८५. गरुडपुराण, अध्याय १, श्लो० १३

२८६. सोऽभिषिच्यर्षभ पुत्र महाप्राव्राज्यमास्थित ।
हिमाह्वय दक्षिण वर्ष तस्य नाम्ना विदुर्बुधा ॥
—ब्रह्माण्ड० अ० १४, श्लो० ६१

२८७ अग्निन्ध्रसूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत् सुतो द्विज ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीर पुत्रशताद् वर. ॥
सोऽभिषिच्यर्षभ पुत्रं महाप्राव्राज्यमास्थित ।
तपस्तेपे महाभाग पुलहाश्रमसंशय ॥
हिमाह्वयं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ ।
तस्मात्तु भारत वर्षं तस्य नाम्ना महात्मन. ॥
—मार्कण्डेय पुराण ६३।३८–४०

२८८. हेमाद्रेर्दक्षिण वर्षं महद् भारत नाम शशास ।
—वाराह पुराण अध्याय० ७४

२८९ तस्य नाम्ना त्विद वर्षं भारत चेति कीर्त्यते ।
—स्कन्द पुराण अध्या० ३७, श्लो० ५७

२९० तस्मात्तु भारत वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधा ।
—लिग पुराण, अध्याय ४७, श्लो० २४

२९१. तत्रापि भरते ज्येष्ठे खण्डेऽस्मिन् स्पृहलीयके ।
तन्नामा चैव विख्यात खण्ड च भारत तदा ॥
—शिव पुराण, अध्या० ५२

२९२ नाभि के पुत्र ऋषभ और उनके पुत्र भरत थे । भरत ने धर्मानुसार जिस वर्ष का शासन किया उनके नामानुसार वही भारतवर्ष कहलाया ।
—हिन्दी विश्वकोष

स्पष्ट है कि "ऋषभपुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम से ही प्रस्तुत देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। पाश्चात्य विद्वान् श्री जे० स्टीवेन्सन[२६३] का भी यही अभिमत है और प्रसिद्ध इतिहासज्ञ गंगाप्रसाद एम ए.[२६४] व रामधारीसिंह दिनकर[२६५] का भी यही मन्तव्य है।

कुछ लोग दुष्यन्त पुत्र भरत से भारतवर्ष का नाम सम्थापित करना चाहते हैं पर प्रबल प्रमाणों के अभाव में उनकी बात किस प्रकार मान्य की जा सकती है। उन्हें अपने मताग्रह को छोड़कर यह सत्य तथ्य स्वीकार करना ही चाहिए कि श्री ऋषभ पुत्र भरत के नाम से ही भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ।

भरत को केवल ज्ञान

दीर्घकाल तक राज्यश्री का उपभोग करने के पश्चात् [भगवान् श्री ऋषभदेव के मोक्ष पधारने के बाद] एकबार सम्राट् भरत वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आदर्श (काँच) के भव्य-भवन में गये। अँगुली से अँगूठी गिर गई, जिससे अँगुली असुन्दर प्रतीत हुई। भरत के मन में एक विचार आया। अन्य आभूषण भी उतार दिए। चिन्तन के आलोक में सोचा—पर-द्रव्यों से ही यह शरीर सुन्दर प्रतीत होता है। कृत्रिम सौन्दर्य वस्तुत सही सौन्दर्य नहीं है। आत्म-

---

२६३ Brahmanical Puranas prove Rishabh to be the father of that Bharat, from whom India took to name ' Bharatvarsha".

—Kalpasutra Introd. P XVI

२६४ ऋषियों ने हमारे देश का नाम प्राचीन चक्रवर्ती सम्राट् भरत के नाम पर भारतवर्ष रखा था।

—प्राचीन भारत पृ० ५

२६५. भरत ऋषभदेव के ही पुत्र थे जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा।

—संस्कृति के चार अध्याय पृ० १२६

सौन्दर्य ही सच्चा सौन्दर्य है। भावना का वेग बढा, कर्म-मल को धोकर वे केवल ज्ञानी बन गये।[२९६]

श्रीमद् भागवतकार ने सम्राट् भरत का जीवन कुछ अन्य रूप से चित्रित किया है। राजर्षि भरत सारी पृथ्वी का राज भोगकर वन मे चले गये और वहाँ तपस्या के द्वारा भगवान् की उपासना की और तीन जन्मो मे भगवत्स्थिति को प्राप्त हुए।[२९७]

जैन दृष्टि से भगवान् के सौ ही पुत्रो ने तथा ब्राह्मी सुन्दरी दोनो पुत्रियो ने श्रमणत्व स्वीकार किया और उत्कृष्ट साधना कर कैवल्य

---

२९६. आयसघरपवेसो भग्गे पडण च अगुलीअस्स।
मेसाणं उम्मुअण सवेगो नाण दिक्खा य॥
—आवश्यक नियुक्ति गा० ४३६

(ख) अह अन्नया कयाति सव्वालकारविभूसितो आयसघर अतीति, तत्थ य सव्वगिओ पुरिसो दीसति, तस्स एव पेच्छमाणस्स अगुलेज्जग पडिय, त च तेण ण णाय पडिय, एव तस्स पलोए तस्स जाहे त अगुलि पलोएति जाव सा अगुली न सोहति तेण अगुलीज्जएण विणा, ताहे पेच्छति पडिय, ताहे कडगपि अवणेति, एव एक्केक्क आभरण अवणेतेण सव्वाणि अवणीताणि, ताहे अप्पाण पेच्छति उच्चियपउम व पउमसर असोभमाण पेच्छइ। पच्छा भणति—आगतुएहि दव्वेहि विभूसित इम सरीरगति, एत्थ सवेगमावन्नो। इम न एव गत सरीर, एव चितेमाणस्स ईहावूहा मग्गणगवेसण करेमाणस्स अपुव्वकरण झाण अणुपविट्ठो केवलणाण उप्पाडेति।
—आवश्यक चूर्णि, पृ० २२७

(ग) आवश्यक मलयगिरिवृत्ति पृ० २८६।

२९७ स भुक्तभोगा त्यक्त्वेमा निर्गतस्तपसा हरिम्।
उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभि॥
—भागवत ११।२।१८ पृ० ७११

प्राप्त किया।[२९८] श्रीमद्भागवत के अभिमतानुसार सौ पुत्रों मे मे कवि, हरि, अन्तरि त, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस, और करभाजन—ये नौ आत्म विद्याविशारद पुत्र वातरशन श्रमण बने।[२९९]

भगवान के संघ में

भगवान् के आध्यात्मिक पावन प्रवचनो को श्रवण करके भगवान् के सघ मे चौरासी हजार श्रमण बने।[३००] तीन लाख श्रमणियाँ बनी,[३०१]

---

२९८ आवश्यक निर्युक्ति, गा० ३४८–३४९ मल० वृ० प० २३१–३२।

२९९ नवाभवन् महाभागा मुनयोह्यर्थशंसिन ।
श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदा ॥
कविर्हरिरन्तरिक्ष प्रबुद्ध पिप्पलायन ।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमस करभाजन ॥

—भागवत ११।२।२०–२१

३०० (क) समवायाङ्ग ८४

(ख) आवश्यक नि० गा० २७८ मल० वृ० प० २०७

(ग) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति

(घ) उसभसेणपामोक्खाओ चउरासीइं समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसपया होत्था।

—कल्पसूत्र, सू० १९७ पृ० ५८

(ङ) त्रिषष्ठि० १।६।

३०१. बभीसुन्दरिपामोक्खाण अज्जियाण तिन्नि सयसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासपया होत्था।

—कल्पसूत्र सू० १९७ पृ० ५८

(ख) आवश्यक मल० वृ० प० २०८ गा० २८२

(ग) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, पृ० ८७ अमोल०

(घ) त्रिषष्ठि० १।६

तीन लाख पांच हजार श्रावक बने[302] और पांच लाख चोपन हजार श्राविकाएँ हुई।[303]

भगवान् ऋषभदेव के श्रमण चौरासी भागो मे विभक्त थे। वे विभाग गण के नाम से पहचाने जाते थे। इन गणो का नेतृत्व करने वाले गणधर कहलाते थे, जिनकी सख्या चौरासी थी। श्रमण-श्रमणियो की सम्पूर्ण व्यवस्था इनके अधीन थी।

धार्मिक प्रवचन करना, अन्य तीर्थिक या अपने शिष्यो के प्रश्नो का समाधान करना और धार्मिक नियमोपनियम का परिज्ञान कराना—ये कार्य भ० ऋषभदेव के अधीन थे और शेष कार्य गणधरो के।

गुण की दृष्टि से श्री ऋषभदेव के श्रमणो को सात विभागो मे विभक्त कर सकते है। (१) केवलज्ञानी, (२) मन पर्यवज्ञानी (३) अवधिज्ञानी (४) वैक्रियर्द्धिक, (५) चतुर्दशपूर्वी (६) वादी (७) सामान्य साधु।

केवल ज्ञानी अथवा पूर्ण ज्ञानियो की संख्या वीस हजार थी।[304] ये प्रथम श्रेणी के ज्ञानी श्रमण थे। श्री ऋषभदेव के

---

३०२. (क) उसभस्स णं सेज्जसपामोक्खाण समणोवासगाण तिन्नि सयसाहस्सीओ पंच सहस्सा उक्कोसिया समणोवासयसपया होत्था।

—कल्पसूत्र० १९७। पृ० ५८

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति० पृ० ८७ अमो०

३०३. उसभस्स ण सुभद्दापामोक्खाण समणोवासियाण पच सयसाहस्सीओ चउप्पन्नं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासिया. ..।

—कल्पसूत्र, सू० १९७ पृ० ५८, पुण्यवि० स०

(ख) समवायाङ्ग।

(ग) लोकप्रकाश।

(घ) आवश्यक निर्युक्ति गा० २८८

३०४. उसभस्सण वीससहस्सा केवलणाणीण उक्कोसिया।

—कल्पसूत्र० सू० १९७ पृ० ५८

समान ही इनको भी पूर्ण ज्ञान था। ये धर्मोपदेश भी प्रदान करते थे।

दूसरी श्रेणी के श्रमण मन पर्यवज्ञानी, अर्थात् मनोवैज्ञानिक थे। ये समनस्क प्राणियो के मानसिक भावो के परिज्ञाता थे। इनकी सख्या बारह हजार, छह सौ, पचास थी।[३०५]

तृतीय श्रेणी के श्रमण अवधिज्ञानी थे। अवधि का अर्थ–सीमा है। अवधिज्ञान का विषय केवल रूपी पदार्थ हैं। जो रूप, रस, गंध, और स्पर्श युक्त समस्त रूपी पदार्थो (पुद्गलो) के परिज्ञाता थे। इनकी सख्या नौ हजार थी।[३०६]

चतुर्थ श्रेणी के साधक वैक्रियर्द्धिक थे। अर्थात् योगसिद्धि प्राप्त श्रमण थे। जो प्राय तप जप व ध्यान मे तल्लीन रहते थे। इन श्रमणो की सख्या बीस हजार छह सौ थी।[३०७]

पचम श्रेणी के श्रमण चतुर्दश पूर्वी थे। ये सम्पूर्ण अक्षर ज्ञान मे

(ख) समवायाङ्ग,
(ग) लोकप्रकाश,

३०५ उसभस्स ण० बारससहस्सा छच्च सया पन्नासा विउलमईण अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु सन्नीणं पचिदियाण पज्जत्तगाण मणोगए भावे जाणमाणाणं पासमाणाण उक्कोसिया विपुलमइसपया होत्था।
—कल्पसूत्र० सू० १९७, पृ० ५८–५९

(ख) समवायाङ्ग

३०६ उसभस्स ण० नव सहस्सा ओहिनाणीण उक्को०।
—कल्प० सू० १९७, पृ० ५८

(ख) समवायाङ्ग।
(ग) लोकप्रकाश।

३०७. उसभस्स ण० वीसमहस्सा छच्च सया वेउव्वियाण उक्कोसिया।
—कल्पसूत्र–सू० ५८

पारगत थे। इनका कार्य था शिष्यो को शास्त्राभ्यास कराना। इनकी सख्या सैंतालीस सौ पचास थी।[308]

छट्ठी श्रेणी के श्रमण वादी थे। ये तर्क और दार्शनिक सिद्धान्तो की चर्चा करने मे प्रवीण थे। अन्य तीर्थियो के साथ शास्त्रार्थ कर उन्हे आर्हत धर्म के अनुकूल बनाना, इनका प्रमुख कार्य था। इनकी सख्या बारह हजार छह सौ पचास थी।[309]

सातवीं श्रेणी मे वे सामान्य श्रमण थे जो अध्ययन, तप, ध्यान तथा सेवा-शुश्रूषा किया करते थे।

इस प्रकार श्री ऋषभदेव की सघ-व्यवस्था सुगठित और वैज्ञानिक थी। धार्मिक राज्य की सुव्यवस्था करने मे वे सर्वतन्त्र-स्वतंत्र थे। लक्षाधिक व्यक्ति उनके अनुयायी थे और उनका उन पर अखण्ड प्रभुत्व था।

भगवान् श्री ऋषभदेव सर्वज्ञ होने के पश्चात् जीवन के सान्ध्य तक आर्यावर्त मे पैदल घूम-घूमकर आत्म-विद्या की अखण्ड ज्योति जगाते रहे। देशना रूपी जल से जगत् की दु खाग्नि को शमन करते रहे।[310] जन-जन के अन्तर्मानस मे त्याग—निष्ठा व सयम-प्रतिष्ठा उत्पन्न करते रहे।

निर्वाण

तृतीय आरे के तीन वर्ष और साढे आठ मास अवशेष रहने पर भगवान् दस सहस्र श्रमणो के साथ अष्टापद पर्वत पर आरूढ हुए।

---

३०८ उसभस्स ण० चत्तारि सहस्सा सत्त सया पन्नासा चोद्दसपुव्वीण अजिणाण जिणसकासाण उक्कोसिया चोद्दसपुव्विसपया होत्था।

—कल्पसूत्र सू० १९७ पृ० ५८

३०९ उसभस्स ण बारस सहस्सा छच्च सया पन्नासा वाईण०

—कल्पसूत्र १९५,१५९

३१० वर्षति सिञ्चति देशनाजलेन,

दु खाग्निना दग्ध जगदिति।

चतुर्दश भक्त से आत्मा को तापित करते हुए अभिजित नक्षत्र के योग मे, पर्यङ्कासन मे स्थित, शुक्ल ध्यान के द्वारा वेदनीय कर्म, आयुष्य कर्म, नाम कर्म और गोत्र-कर्म को नष्ट कर सदा-सर्वदा के लिए अक्षर अजर अमर पद को प्राप्त हुए।[311] जैन परिभाषा मे इसे निर्वाण या

---

३११ चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउय पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते, इमीसे ओसप्पिणीए सुसमदूसमाए समाए बहुविइक्कताए तिहि वासेहि अद्धनवमेहि य मासेहि सेसेहि ' " उप्पि अट्ठावयसेलसिहरसि दसहि अणगारसहस्सेहिं सद्धि चोद्दसमेण भत्तेण अप्पाणएण अभिइणा नक्खत्तेण जोगमुवागएण पुव्वण्हकालसमयसि सपलियकनिसन्ने कालगए विइक्कते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

—कल्पसूत्र, सू० १९९, पृ० ५९

(ख) निव्वाणमतकिरिया सा चोद्दसमेण पढमनाहस्स ।
सेसाण मासिएण वीरजिणिदस्स छट्ठेण ॥
अट्ठावय-चपु-ज्जेंत-पावा-सम्मेयसेलसिहरेसु ।
उसभ वसुपुज्ज नेमी वीरो सेसा य सिद्धिगया ॥

—आवश्यक निर्युक्ति० गा० ३२८–३२९

दसहि सहस्सेहुसभे सेसा उ सहस्सपरिवुडा सिद्धा ।

—आवश्यक नि० गा० ३३३

(ग) एव च सामी विहरमाणो थोवणग पुव्वसयसहस्स केवलपरियाय पाउणित्ता पुणरवि अट्ठावए पव्वए समोसढो, तत्थ चोद्दसमेण भत्तेण पाओवगतो, तत्थ माहबहुलतेरसीपक्खेणं दसहिं अणगारसहस्सेहि सद्धि सपरिवुडे सपलियकणिसन्नो पुव्वण्हकाल-समयसि अभिइणा णक्खत्तेण सुसमदूसमाए एगूणणउतीहिं पक्खेहि सेसेहिं खीणे आउगे णामे गोत्ते वेयणिज्जे कालगते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

चुलसीतीए जिणवरो,
समणसहस्सेहि परिवुडो भगव ।
दसहि सहस्सेहि सम,
निव्वाणमणुत्तर पत्तो ॥

—आवश्यक चूर्णि पृ० २२१

परिनिर्वाण कहा है। शिव पुराण ने अष्टा पद पर्वत के स्थान पर कैलाश पर्वत का उल्लेख किया है।[312]

भगवान् श्री ऋषभदेव की निर्वाणतिथि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति,[313] कल्पसूत्र,[314] त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र[315] के अनुसार माघ कृष्णा

(घ) दीक्षाकालात् पूर्वलक्ष, क्षपयित्वा तत. प्रभु ।
ज्ञात्वा स्वमोक्षकाल च, प्रतस्थेऽष्टापद प्रति ॥
शैलमष्टापद प्राप, क्रमेण सपरिच्छद ।
निर्वाणसौधसोपानमिवाऽऽरोहच्च त प्रभु ॥
सम मुनीना दशभि सहस्रै प्रत्यपद्यत ।
चतुर्दशेन तपसा, पादपोपगम प्रभु ॥

—त्रिषष्ठि० १।६।४५६ से ४६१

(ङ) दसहि अणगारसहस्सेहि सद्धि सपरिवुडे अट्ठावयसेलसिहरसि चोद्दसमेण भत्तेण अप्पाणएण सपलिअकासणे निसण्णे पुव्वण्ह कालसमयसि अभिइणा णक्खत्तेण जोगमुवागएण सुसमदुस्समाए एगूणणवइए पक्खेहि सेसेहि कालगए वीइक्कते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सू० ४८ पृ० ६१

३१२. कैलाशे पर्वते रम्ये,
वृषभोऽय जिनेश्वर ।
चकार स्वावतार च
सर्वज्ञ. सर्वग शिव ॥

—शिवपुराण ५६

३१३. जे से हेमताण तच्चे मासे पचमे पक्खे माहबहुले तस्स ण माहबहुलस्स तेरसीपक्खेण ।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सू० ४८, पृ० ६१

३१४. जे से हेमताण तच्चेमासे पचमे पक्खे माहबहुले तस्स ण माहबहुलस्स तेरसीपक्खेण ।

—कल्पसूत्र, सू० १९६, पृ० ५६

३१५. त्रिषष्ठि० १।६

त्रयोदशी है और तिलोय पण्णत्ति[316] व महापुराण[317] के अनुसार माघकृष्णा चतुर्दशी है।

विज्ञों का मन्तव्य है कि उस दिन श्रमणों ने शिवगति प्राप्त भगवान् की सस्मृति मे दिन मे उपवास रखा और रात्रि भर धर्म जागरण किया। अत वह तिथि शिवरात्रि के नाम से प्रसिद्ध हुई। 'शिव', मोक्ष, 'निर्वाण'—ये सभी पर्यायवाची शब्द है।

ईशान सहिता मे लिखा है कि माघ कृष्णा चतुर्दशी की महानिशा मे कोटिसूर्यप्रभोपम भगवान् आदिदेव शिवगति प्राप्त हो जाने से शिव—इस लिंग से प्रकट हुए। जो निर्वाण के पूर्व आदिदेव कहे जाते थे वे अब शिवपद प्राप्त हो जाने से "शिव" कहलाने लगे।[318]

उत्तर प्रान्त मे शिव-रात्रि पर्व फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को मनाया जाता है तो दक्षिण प्रान्त मे माघकृष्णा चतुर्दशी को। इस भेद का कारण यह है कि उत्तर प्रान्त मे मास का प्रारम्भ कृष्ण पक्ष से मानते है और दक्षिण प्रान्त मे शुक्ल पक्ष से। इस दृष्टि से दक्षिण प्रान्तीय माघ कृष्णा चतुर्दशी उत्तर प्रान्त मे फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी हो जाती है। कालमाधवीय नागर खण्ड मे प्रस्तुत मासवैषम्य का समन्वय करते हुए स्पष्ट लिखा है कि दाक्षिणात्य मानव के माघ मास

---

३१६. माघस्स किण्हि चोद्दसि पुव्वण्हे णिययजम्मणक्खत्ते अट्ठावयम्मि उसहो अजुदेण समं गओज्जोमि।

—तिलोयपण्णत्ति

३१७ ......घणतुहिणकणाउलि माहमासि सूरुग्गमिकसणचउद्दसीहि णिव्वुइ तित्थकरि पुरिससीहि।

—महापुराण ३७।३

३१८. माघे कृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि।
शिवलिंगतयोद्भूत. कोटिसूर्यसमप्रभ. ॥
तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथि.।

—ईशान सहिता

के शेष अथवा अन्तिम पक्ष की, और उत्तर प्रान्तीय मानव के फाल्गुन के प्रथम मास की कृष्णा चतुर्दशी शिवरात्रि कही गई है।[319]

पूर्व बताया जा चुका है कि ऋषभदेव का महत्त्व केवल श्रमण परम्परा मे ही नही अपितु ब्राह्मणपरम्परा मे भी रहा है। वहाँ उन्हे आराध्यदेव मानकर मुक्त कठ से गुणानुवाद किया गया है। सुप्रसिद्ध वैदिक साहित्य के विद्वान् प्रो० विरुपाक्ष एम ए वेदतीर्थ और आचार्य विनोवा भावे जैसे बहुश्रुत विचारक ऋग्वेद आदि मे ऋषभदेव की स्तुति के स्वर सुनते है।+

श्री रामधारीसिंह दिनकर भ० श्री ऋषभदेव के सम्बन्ध मे लिखते है—"मोहन जोदडो" की खुदाई मे योग के प्रमाण मिले है। और जैनमार्ग के आदि तीर्थकर श्री ऋषभदेव थे, जिनके साथ योग और वैराग्य की परम्परा उसी प्रकार लिपटी हुई है जैसे कालान्तर मे शिव के साथ समन्वित हो गई। इस दृष्टि से कई जैन विद्वानो का यह मानना अयुक्तियुक्त नही दिखता कि ऋषभदेव वेदोल्लिखित होने पर भी वेद पूर्व हैं।❀

डाक्टर जिम्मर लिखते है—"आज प्राग् ऐतिहासिक काल के महापुरुषो के अस्तित्व को सिद्ध करने के साधन उपलब्ध नही है, इसका अर्थ यह नही कि वे महापुरुष हुए ही नही। इस अवसर्पिणी काल मे भोग-भूमि के अन्त मे अर्थात् पाषाणकाल के अवसान पर कृषिकाल के प्रारम्भ मे पहले तीर्थङ्कर ऋषभ हुए। जिन्होने मानव को सभ्यता का पाठ पढाया, उनके पश्चात् और भी तीर्थङ्कर हुए,

---

३१६. माघमासस्य शेषे या प्रथमे फाल्गुणस्य च।
कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रि प्रकीर्तिता॥
—कालमाधवीय नागर खण्ड

\+ पूर्व इतिवृत्त—उपाध्याय अमरमुनिजी महाराज, गुरुदेव श्री रत्नमुनि।

❀ आजकल, मार्च १९६२ पृ० ८।

जिनमे से कई का उल्लेख वेदादि ग्रन्थो मे भी मिलता है। अत. जैन धर्म भगवान् ऋषभदेव के काल से चला आ रहा है।×

ऋग्वेद मे भगवान् श्री ऋषभ को पूर्वज्ञान का प्रतिपादक और दु खो का नाश करने वाला बतलाते हुए कहा है—"जैसे जल से भरा मेघ वर्षा का मुख्य स्रोत है, जो पृथ्वी की प्यास को बुझा देता है, उसी प्रकार पूर्वी ज्ञान के प्रतिपादक वृषभ [ऋषभ] महान् है, उनका शासन वर दे। उनके शासन मे ऋषि परम्परा से प्राप्त पूर्व का ज्ञान आत्मा के शत्रुओ—क्रोधादि का विध्वसक हो। दोनो [संसारी और मुक्त] आत्माएँ अपने ही आत्मगुणो से चमकती हैं। अत वे राजा है—वे पूर्ण ज्ञान के आगार है और आत्म-पतन नही होने देते।"[320]

वैदिक ऋषि भक्ति-भावना से विभोर होकर उस महाप्रभु की स्तुति करता हुआ कहता है—हे आत्मद्रष्टा प्रभो! परम सुख पाने के लिए मैं तेरी शरण मे आना चाहता हूँ। क्योकि तेरा उपदेश और तेरी वाणी शक्तिशाली है—उनको मैं अवधारण करता हूँ। हे प्रभो! सभी मनुष्यो और देवो में तुम्ही पहले पूर्वयाया [पूर्वगत ज्ञान के प्रतिपादक] हो।[321]

× दी फिलॉसफीज ऑव इण्डिया, पृ० २१७ डा० जिम्मर।

(ख) अहिंसावाणी वर्ष १२ अक ६, पृ० ३७६, डाक्टर कामताप्रसाद के लेख मे भी उद्धृत।

३२०. असूतपूर्वा वृषभो ज्यायनिमा अस्य शुरुध सन्ति पूर्वी।
दिवो न पाता विदथस्य धीभि. क्षत्र राजाना प्रदिवोदधार्थे॥

—ऋग्वेद ५२-३८

३२१. मखस्य ते तीवषस्य प्रजूतिमियर्मि वाचमृताय भूषन्।
इन्द्र क्षितीमामास मानुषीणा विशा दैवी नामुत पूर्वयाया॥

—ऋग्वेद २।३४।२

"आत्मा ही परमात्मा है"[322]—यह जैन दर्शन का मूल सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को ऋग्वेद के शब्दो मे भगवान् श्री ऋषभदेव ने इस रूप मे प्रतिपादित किया—"मन, वचन, काय तीनो योगो से बद्ध [संयत] वृषभ ने घोषणा की कि महादेव अर्थात् परमात्मा मर्त्यो मे निवास करता है।"[323] उन्होने स्वय कठोर तपश्चरणरूप साधना कर वह आदर्श जन-नयन के समक्ष प्रस्तुत किया। एतदर्थ ही ऋग्वेद के मेधावी महर्षि ने लिखा कि—"ऋषभ स्वय आदिपुरुष थे जिन्होने सब मे प्रथम मर्त्यदशा मे देवत्व की प्राप्ति की थी।"[324]

अथर्ववेद का ऋषि मानवो को ऋषभदेव का आह्वान करने के लिए यह प्रेरणा करता है कि—"पापो से मुक्त पूजनीय देवताओ मे सर्व प्रथम तथा भवसागर के पोत को मै हृदय से आह्वान करता हूँ। हे सहचर बन्धुओ! तुम आत्मीय श्रद्धा द्वारा उसके आत्मबल और तेज को धारण करो।[325] क्योकि वे प्रेम के राजा है उन्होने

---

३२२ जे अप्पा से परमप्पा।

(ख) मग्गण-गुणठाणेहि य,
चउदसहि तह असुद्धणया।
विण्णेया ससारी,
सव्वे सुद्धा हु सुद्धनया ॥

—द्रव्यसग्रह १।१३

(ग) सदामुक्त ' '''कारणपरमात्मान जानाति।

—नियमसार, तात्पर्यवृत्ति गा० ९६

३२३. त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीती।
महादेवो मर्त्यां आविवेश ॥

—ऋग्वेद ४।५८।३

३२४. तन्मर्त्यस्य देवत्वमजानमग्रः।

—ऋग्वेद ३१।१७

३२५ अहो मुच वृषभ यज्ञियान विराजन्त प्रथमम्वराणाम्।
अपा न पातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण तमिन्द्रिय दत्तमोज ॥

—अथर्ववेद कारिका १६।४२।४

उस सघ की स्थापना की है जिसमे पशु भी मानव के समान माने जाते थे और उनको कोई भी मार नही सकता था।[३२६]

श्रीमद्भागवत के अनुसार श्री ऋषभ का जन्म रजोगुणी जनो को कैवल्य की शिक्षा देने के लिए हुआ था।[३२७] जिन्होने विषयभोगो की अभिलाषा करने के कारण अपने वास्तविक श्रेय से भूले-बिसरे मानवो को करुणावश निर्भय आत्म-लोक का उपदेश दिया और जो स्वय निरन्तर अनुभव करने वाले आत्म-स्वरूप की प्राप्ति के द्वारा सब प्रकार की तृष्णा से मुक्त थे, उन भगवान् श्री ऋषभदेव को नमस्कार है।[३२८]

इस प्रकार हम देखते है कि भागवत मे ही नही, किन्तु कूर्म पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण आदि वैदिक ग्रन्थो मे उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण गाथाएँ उट्टङ्कित है।

बौद्ध ग्रन्थ "आर्य मजुश्री मूलकल्प" मे भारत के आदि सम्राटो मे नाभिपुत्र ऋषभ और ऋषभ पुत्र भरत की गणना की गई है। उन्होने हिमालय से सिद्धि प्राप्त की[३२९], वे व्रतो को पालने मे दृढ

---

३२६. नास्य पशून् समानान् हिनस्ति।

—अथर्ववेद

३२७. अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थम्।

—श्रीमद्भागवत पचम स्कन्ध, अध्या० ६

३२८. नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्ण..
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धे.।
लोकस्य य. करुणयाभयमात्मलोक-
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥

—श्रीमद् भागवत ५।६।१६।५६६

३२६ जैन दृष्टि से सिद्धि-स्थल अष्टापद है, हिमालय नही।

—लेखक

थे। वे ही निर्ग्रन्थ तीर्थङ्कर ऋषभ जैनो के आप्तदेव थे।[330] धम्म पद मे ऋषभ को सर्वश्रेष्ठ वीर कहा है।[331]

भारत के अतिरिक्त बाह्य देशों मे भी भगवान् ऋषभदेव का विराट् व्यक्तित्व विविध रूपो म चमका है। प्रथम उन्होंने कृषिकला का परिज्ञान कराया, अत वे "कृषि देवता" है। आधुनिक विद्वान् उन्हे "एग्रीकल्चरएज" मानते है।[332] देशनारूपी वर्षा करने से वे "वर्षा के देवता" कहे गये है। केवल ज्ञानी होने से सूर्यदेव के रूप मे मान्य है।

इस प्रकार भगवान् श्री ऋषभदेव का जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व विश्व के कोटि-कोटि मानवो के लिए कल्याणरूप, मगलरूप और वरदानरूप रहा है। वे श्रमण सस्कृति और ब्राह्मण सस्कृति के आदि पुरुष है। भारतीय संस्कृति के ही नहीं, मानव सस्कृति के आद्य निर्माता हैं। उनके हिमालयसदृश विराट् जीवन पर दृष्टि डालते-डालते मानव का सिर ऊँचा हो जाता है और अन्तर भाव श्रद्धा से झुक जाता है।

---

३३०. प्रजापते सुतो नाभि तस्यापि आगमुच्यात ।
नाभिनो ऋषभपुत्रो वै सिद्धकर्म दृढव्रत. ॥
तस्यापि मणिचरो यक्षः सिद्धो हेमवेत गिरो ।
ऋषभस्य भरत पुत्र सोऽपि मजतान तदा जपेन ॥
निर्ग्रन्थ तीर्थङ्कर ऋषभ निर्ग्रन्थ रूपि

[illegible] श्री [illegible] श्लो० ३६०-३६१-३६२

३३१. उसभ पवर वीर।

—धम्मपद ४२२

३३२. [illegible] आव [illegible]—[illegible], [illegible]
आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, द्वितीय खण्ड पृ० ८

आदिम पृथ्वीनाथम्,

आदिम निष्परिग्रहम् ।

आदिमं तीर्थनाथं च,

ऋषभस्वामिनं स्तुम. ॥

—आचार्य हेमचन्द्र

आदिपुरुष आदीश जिन,

आदि सुबुद्धि करतार ।

धर्मधुरंधर परम गुरु,

नमो आदि अवतार ॥

—पाण्डे हेमराज

परिशिष्ट

परिशिष्ट | १

बहत्तर कलाओं के नाम

१ लेह—लेख लिखने की कला।

२ गणिय—गणित।

३ रूव—रूप सजाने की कला।

४ नट्ट—नाट्य करने की कला।

५ गीय—गीत गाने की कला।

६. वाइय—वाद्य बजाने की कला।

७ सरगय—स्वर जानने की कला।

८ पुक्खरगय—ढोल आदि वाद्य बजाने की कला।

९ समताल—ताल देना।

१० जूय—जूआ खेलने की कला।

११ जणवाय—वार्तालाप की कला।

१२ पोक्खच्च—नगर के संरक्षण की कला।

१३ अट्ठावय—पासा खेलने की कला।

१४ दगमट्टिय—पानी और मिट्टी के संमिश्रण से वस्तु बनाने की कला

१५ अन्नविहि—अन्न उत्पन्न करने की कला।

१६ पाणविहि—पानी उत्पन्न करना, और उसे शुद्ध करने की कला।

१७ वत्थविहि—वस्त्र बनाने की कला।

१८ सयणविहि—शय्या निर्माण करने की कला।

१९ अज्ज—संस्कृत भाषा में कविता निर्माण की कला।

२०. पहेलिय—प्रहेलिका निर्माण की कला।

२१ मागहिय—छन्द विशेष बनाने की कला।

२२ गाहं—प्राकृत भाषा में गाथा निर्माण की कला।

२३. सिलोग—श्लोक बनाने की कला।

२४. गंध जुत्ति—सुगन्धित पदार्थ बनाने की कला।

२५. मधुसित्थं—मधुरादि छह रस बनाने की कला।

२६ आभरणविहिं—अलंकार निर्माण की तथा धारण की कला।
२७. तरुणीपडिकम्मं—स्त्री को शिक्षा देने की कला।
२८ इत्थीलक्खणं—स्त्री के लक्षण जानने की कला।
२९ पुरिसलक्खण—पुरुष के लक्षण जानने की कला।
३० हयलक्खण—घोडे के लक्षण जानने की कला।
३१ गयलक्खण—हस्ती के लक्षण जानने की कला।
३२ गोलक्खण—गाय के लक्षण जानने की कला।
३३ कुक्कुडलक्खणं—कुक्कुट के लक्षण जानने की कला।
३४ मिढयलक्खण—मेंढे के लक्षण जानने की कला।
३५ चक्कलक्खण—चक्र-लक्षण जानने की कला।
३६ छत्तलक्खण—छत्र-लक्षण जानने की कला।
३७ दण्डलक्खण – दण्ड लक्षण जानने की कला।
३८ असिलक्खण—तलवार के लक्षण जानने की कला।
३९ मणिलक्खण—मणि-लक्षण जानने की कला।
४० कागणिलक्खण—काकिणी-चक्रवर्ती के रत्नविशेष के लक्षण को जानने की कला।
४१ चम्मलक्खण—चर्म-लक्षण जानने की कला।
४२ चंदलक्खण—चन्द्र लक्षण जानने की कला।
४३ सूरचरियं—सूर्य आदि की गति जानने की कला।
४४ राहुचरियं—राहु आदि की गति जानने की कला।
४५ गहचरियं—ग्रहों की गति जानने की कला।
४६ सोभागकर—सौभाग्य का ज्ञान।
४७ दोभागकरं—दुर्भाग्य का ज्ञान।
४८ विज्जागयं—रोहिणी, प्रज्ञप्ति आदि विद्या सम्बन्धी ज्ञान।
४९ मंतगयं—मन्त्र साधना आदि का ज्ञान।
५० रहस्सगयं—गुप्त वस्तु को जानने का ज्ञान।
५१ सभासं—प्रत्येक वस्तु के वृत्त का ज्ञान।
५२ चारं—सैन्य का प्रमाण आदि जानना।
५३ पडिचारं—सेना को रणक्षेत्र में उतारने की कला।
५४ वूहं—व्यूह रचने की कला।
५५. पडिवूहं—प्रतिव्यूह रचने की कला (व्यूह के सामने उसे पराजित करने वाले व्यूह की रचना)

५६. खंधावारमाणं— सेना के पडाव का प्रमाण जानना ।
५७ नगरमाणं – नगर का प्रमाण जानने की कला ।
५८ वत्थुमाणं—वस्तु का प्रमाण जानने की कला ।
५६ खंधावारनिवेस—सेना का पडाव आदि कहाँ डालना इत्यादि का परिज्ञान ।
६० वत्थुनिवेस—प्रत्येक वस्तु के स्थापन कराने की कला ।
६१ नगरनिवेस—नगर निर्माण का ज्ञान ।
६२ ईसत्थ--ईषत् को महत् करने की कला ।
६३ छरुप्पवाय - तलवार आदि की मूठ आदि बनाने की कला ।
६४ आससिक्ख—अश्व-शिक्षा ।
६५ हत्थिसिक्ख—हस्ती-शिक्षा ।
६६ धणुवेय – धनुर्वेद ।
६७ हिरण्णपाग, सुवण्णपाग, मणिपाग, धातुपाग—हिरण्यपाक, सुवर्णपाक, मणिपाक, धातुपाक बनाने की कला ।
६८ बाहुजुद्ध, दंडजुद्ध, मुट्ठिजुद्ध, अट्ठिजुद्ध, जुद्ध, निजुद्ध, जुद्धाइजुद्ध — बाहु युद्ध, दण्ड युद्ध, मुष्टि युद्ध, यष्टि युद्ध, युद्ध, नियुद्ध, युद्धातियुद्ध करने की कला ।
६६ सुत्ताखेड, नालियाखेड, वट्टखेड, धम्मखेड, चम्मखेड—सूत बनाने की, नली बनाने की, गेंद खेलने की, वस्तु के स्वभाव जानने की, चमड़ा बनाने आदि की कलाएँ ।
७० पत्तच्छेज्ज—कडगच्छेज्ज—पत्र-छेदन, वृक्षाङ्गविशेष छेदने की कला ।
७१ सजीव, निज्जीव—सजीवन, निर्जीवन ।
७२. सउणरुय—पक्षी के शब्द से शुभाशुभ जानने की कला ।

(क) समवायाङ्ग सूत्र समवाय ७२
(ख) नायाधम्मकहा पृ० २१
(ग) राजप्रश्नीय सूत्र पत्र ३४०
(घ) औपपातिक सूत्र ४०, पत्र० १८५
(ङ) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका

परिशिष्ट | २

चौंसठ कलाओं के नाम

१. नृत्य
२ औचित्य
३. चित्र
४. वादित्र
५ मंत्र
६ तन्त्र
७ ज्ञान
८ विज्ञान
९ दम्भ
१० जलस्तम्भ
११ गीतमान
१२ तालमान
१३ मेघवृष्टि
१४ फलाकृष्टि
१५ आरामरोपण
१६ आकारगोपन
१७ धर्मविचार
१८ शकुनसार
१९ क्रियाकल्प
२० संस्कृत जल्प
२१. प्रासाद नीति
२२. धर्मरीति
२३ वर्णिकावृद्धि
२४ सुवर्णसिद्धि
२५ सुरभितैलकरण
२६. लीलासंचरण
२७ हयगज परीक्षण
२८ पुरुष स्त्रीलक्षण
२९ हेमरत्न भेद
३० अष्टादश लिपि-परिच्छेद
३१ तत्कालबुद्धि
३२ वस्तुसिद्धि
३३ कामविक्रिया
३४ वैद्यक क्रिया
३५ कुम्भभ्रम
३६ सारिश्रम
३७ अंजनयोग
३८ चूर्णयोग
३९ हस्तलाघव
४० वचनपाटव
४१. भोज्यविधि
४२ वाणिज्यविधि
४३ मुखमण्डन
४४ शालिखण्डन
४५ कथाकथन
४६ पुष्पग्रन्थन
४७ वक्रोक्ति
४८ काव्य शक्ति
४९ स्फारविधिवेष
५० सर्वभाषाविशेष
५१ अभिधानज्ञान
५२ भूषणपरिधान

५३ भृत्योपचार
५४ गृहाचार
५५ व्याकरण
५६ परनिराकरण
५७ रन्धन
५८. केशबन्धन
५९ वीणानाद
६०. वितण्डावाद
६१ अङ्कविचार
६२. लोकव्यवहार
६३ अन्त्याक्षरिका
६४ प्रश्नप्रहेलिका ·

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार २, टीका पत्र १३९–२, १४०–१

—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका ।

❀

श्री ऋषभदेव के पुत्र और पुत्रियो के नाम

१ भरत
२ बाहुबली
३ शङ्ख
४ विश्वकर्मा
५ विमल
६ सुलक्षण,
७. अमल
८ चित्राङ्ग
९ ख्यातकीर्ति
१० वरदत्त
११ दत्त
१२ सागर
१३ यशोधर
१४ अवर
१५ थवर
१६ कामदेव
१७ ध्रुव
१८ वत्स
१९. नन्द
२०. सूर
२१. सुनन्द
२२. कुरु
२३. अग
२४. बंग
२५ कोसल
२६ वीर
२७. कलिंग
२८ मागध
२९ विदेह
३० संगम
३१ दशार्ण
३२ गम्भीर
३३ वसुवर्मा
३४ सुवर्मा
३५ राष्ट्र
३६ सुराष्ट्र
३७ बुद्धिकर
३८ विविधकर
३९ सुयश
४० यश कीर्ति
४१ यशस्कर
४२ कीर्तिकर
४३ सुषेण
४४ ब्रह्मसेण
४५ विक्रान्त
४६ नरोत्तम
४७ चन्द्रसेन
४८ महसेन
४९ सुसेण
५० भानु
५१. कान्त
५२ पुष्पयुत
५३. श्रीधर
५४ दुर्द्धर्ष

५५. सुसुमार
५६. दुर्जय
५७ अजयमान
५८ सुधर्मा
५९ धर्मसेन
६० आनन्दन
६१ आनन्द
६२ नन्द
६३ अपराजित
६४ विश्वसेन
६५ हरिषेण
६६ जय
६७. विजय
६८ विजयन्त
६९ प्रभाकर
७० अरिदमन
७१ मान
७२ महावाहु
७३ दीर्घवाहु
७४ मेघ
७५. सुघोष
७६ विश्व
७७. वराह
७८. वसु
७९. सेन
८०. कपिल
८१. शैलविचारी
८२ अरिञ्जय
८३ कुञ्जरवल
८४. जयदेव
८५ नागदत्त
८६ काश्यप
८७. वल
८८. वीर
८९ शुभमति
९०. सुमति
९१ पद्मनाभ
९२ सिंह
९३ सुजाति
९४ सञ्जय
९५ सुनाम
९६ नरदेव
९७ चित्तहर
९८ सुखर
९९ दृढरथ
१०० प्रभञ्जन+

दिगम्बर परम्परा के आचार्य जिनसेन ने १०१ पुत्र माने है और उसका नाम वृषभसेन दिया है।❀

पुत्रियो के नाम—
१—ब्राह्मी।
२—सुन्दरी।

+ (क) कल्पसूत्र किरणावली पत्र १५१–५२
(ख) कल्पसूत्र सुवोधिका टीका व्याख्यान ७ पृ० ४९८

❀ महापुराण पर्व १६, पृ० ३४६

परिशिष्ट | ४

ग्रन्थ के टिप्पण में प्रयुक्त ग्रन्थों के नाम

१. आचाराङ्ग सूत्र
२ आवश्यक निर्युक्ति—आचार्य भद्रबाहु
३ आवश्यक चूर्णि—जिनदासगणी महत्तर
४ आवश्यक निर्युक्ति—मलयगिरि वृत्ति
५ आवश्यक भाष्य
६ आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति
७ आदि पुराण
८ अथर्ववेद
९ अथर्व संहिता
१० उत्तराध्ययन सूत्र
११ उत्तर पुराण
१२ ऋग्वेद
१३ आर्य मंजुश्री मूलकल्प
१४. अग्निपुराण
१५ औपपातिक सूत्र
१६ आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ कलकत्ता
१७. अष्टाध्यायी पाणिनि
१८ ईशान संहिता
१९ कल्पसूत्र—आचार्य भद्रबाहु, पु० प्र० पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित
२० कल्पसूत्र—कल्पार्थबोधिनी
२१ कल्पसूत्र—कल्पसुबोधिका टीका—उपाध्याय विनय विजय जी
२२ कल्पसूत्र कल्पलता टीका— समय सुन्दर जी
२३ कल्पसूत्र-कल्पद्रुम कलिका— लक्ष्मीवल्लभ
२४. कल्पसूत्र- कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी—राजेन्द्र सूरि
२५ कल्पसूत्र—मणिसागर
२६. कूर्मपुराण
२७. कालिका पुराण
२८. पार्श्वनाथाभ्युदय [illegible]

२९ चतुर्विंशतिस्तव
३०. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
३१ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—टीका
३२. जैन रामायण— केशराज जी
३३ तत्त्वार्थभाष्य
३४ द्रव्य सग्रह
३५. चर्पट पजरिका—आचार्य शकर
३६ दशवैकालिक चूर्णि—अगस्त्यसिंह चूर्णि
३७. दशवैकालिक चूर्णि—जिनदासगणी महत्तर
३८. धनञ्जय नाममाला
३९. नारद पुराण
४० त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र—आचार्य हेमचन्द्र
४१ त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र (गुजराती भाषान्तर)
४२. वायु पुराण
४३ ब्रह्माण्ड पुराण
४४. वाराह पुराण
४५. स्कन्ध पुराण
४६. स्थानाङ्ग
४७. स्थानाङ्गवृत्ति
४८. समवायाङ्ग
४९. पउमचरियं—विमल सूरि
५०. महापुराण—आचार्य जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी
५१. सिद्धान्त सग्रह
५२. मनुस्मृति
५३ सेनप्रश्न
५४ बुद्धचर्या
५५ ललित विस्तर
५६. भगवती सूत्र
५७. श्रीमद्भागवत
५८. नन्दीसूत्र
५९. श्रमणसूत्र
६० बृहत्स्वयम्भू स्तोत्र—आचार्य समन्तभद्र